कर्मभूमि

हमारे स्कूलों और कॉलेजों में जिस तत्परता से फीस वसूल की जाती है, शायद मालगुजारी भी उतनी सख्ती से नहीं वसूल की जाती। महीने में एक दिन नियत कर दिया जाता है। उस दिन फीस का दाखिला होना अनिवार्य है। या तो फीस दीजिए, या नाम कटवाइए, या जब तक फीस न दाखिल हो, रोज कुछ जुर्माना दीजिए। कहीं-कहीं ऐसा भी नियम है कि उसी दिन फीस दुगुनी कर दी जाती है, और किसी दूसरी तारीख को दुगुनी फीस न दी तो नाम कट जाता है। काशी के क्वीन्स कॉलेज में यही नियम था। सातवीं तारीख को फीस न दो, तो इक्कीसवीं तारीख को दुगुनी फीस देनी पड़ती थी, या नाम कट जाता था। ऐसे कठोर नियमों का उद्देश्य इसके सिवा और क्या हो सकता था, कि गरीबों के लड़के स्कूल छोड़कर भाग जाएं- वही हृदयहीन दफ्तरी शासन, जो अन्य विभागों में है, हमारे शिक्षालयों में भी है। वह किसी के साथ रियायत नहीं करता। चाहे जहां से लाओ, कर्ज लो, गहने गिरवी रखो, लोटा-थाली बेचो, चोरी करो, मगर फीस जरूर दो, नहीं दूनी फीस देनी पड़ेगी, या नाम कट जाएगा। जमीन और जायदाद के कर वसूल करने में भी कुछ रियायत की जाती है। हमारे शिक्षालयों में नर्मी को घुसने ही नहीं दिया जाता। वहां स्थायी रूप से मार्शल-लॉ का व्यवहार होता है। कचहरी में पैसे का राज है, हमारे स्कूलों में भी पैसे का राज है, उससे कहीं कठोर, कहीं निर्दय। देर में आइए तो जुर्माना न आइए तो जुर्माना सबक न याद हो तो जुर्माना किताबें न खरीद सकिए तो जुर्माना कोई अपराध हो जाए तो जुर्माना शिक्षालय क्या है, जुर्मानालय है। यही हमारी पश्चिमी शिक्षा का आदर्श है, जिसकी तारीफों के पुल बांधे जाते हैं। यदि ऐसे शिक्षालयों से पैसे पर जान देने वाले, पैसे के लिए गरीबों का गला काटने वाले, पैसे के लिए अपनी आत्मा बेच देने वाले छात्र निकलते हैं, तो आश्चर्य क्या है-

आज वही वसूली की तारीख है। अध्यापकों की मेजों पर रुपयों के ढेर लगे हैं। चारों तरफ खनाखन की आवाजें आ रही हैं। सराफे में भी रुपये की ऐसी झंकार कम सुनाई देती है। हरेक मास्टर तहसील का चपरासी बना बैठा हुआ है। जिस लड़के का नाम पुकारा जाता है, वह अध्यापक के सामने आता है, फीस देता है और अपनी जगह पर आ बैठता है। मार्च का महीना है। इसी महीने में अप्रैल, मई और जून की फीस भी वसूल की जा रही है। इम्तहान की फीस भी ली जा रही है। दसवें दर्जे में तो एक-एक लड़के को चालीस रुपये देने पड़ रहे हैं।
अध्यापक ने बीसवें लड़के का नाम पुकारा-अमरकान्त
अमरकान्त गैरहाजिर था।
अध्यापक ने पूछा- क्या अमरकान्त नहीं आया?
एक लड़के ने कहा- आए तो थे, शायद बाहर चले गए हों।
'क्या फीस नहीं लाया है?'
किसी लड़के ने जवाब नहीं दिया।
अध्यापक की मुद्रा पर खेद की रेखा झलक पड़ी। अमरकान्त अच्छे लड़कों में था। बोले-शायद फीस लाने गया होगा। इस घंटे में न आया, तो दूनी फीस देनी पड़ेगी। मेरा क्या अख्तियार है- दूसरा लड़का चले-गोवर्धनदास
सहसा एक लड़के ने पूछा-अगर आपकी इजाजत हो, तो मैं बाहर जाकर देखूं?
अध्यापक ने मुस्कराकर कहा-घर की याद आई होगी। खैर, जाओ मगर दस मिनट के अंदर आ जाना। लडकों को बुला-बुलाकर फीस लेना मेरा काम नहीं है।
लड़के ने नम्रता से कहा-अभी आता हूं। कसम ले लीजिए, जो हाते के बाहर जाऊं।
यह इस कक्षा के संपन्न लड़कों में था, बड़ा खिलाड़ी, बड़ा बैठकबाज। हाजिरी देकर गायब हो जाता, तो शाम की खबर लाता। हर महीने फीस की दूनी रकम जुर्माना दिया करता था। गोरे रंग का, लंबा, छरहरा शौकीन युवक था। जिसके प्राण खेल में बसते थे। नाम था मोहम्मद सलीम।
सलीम और अमरकान्त दोनों पास-पास बैठते थे। सलीम को हिसाब लगाने या तर्जुमा करने में अमरकान्त से विशेष सहायता मिलती थी। उसकी कापी से नकल कर लिया करता था। इससे दोनों में दोस्ती हो गई थी। सलीम कवि था। अमरकान्त उसकी गजलें बड़े चाव से सुनता था। मैत्री का यह एक और कारण था।
सलीम ने बाहर जाकर इधर-उधर निगाह दौड़ाई, अमरकान्त का कहीं पता न था। जरा और आगे बढे।, तो देखा, वह एक वृक्ष की आड़ में खड़ा है। पुकारा-अमरकान्त ओ बुध्दू लाल चलो, फीस जमा कर। पंडितजी बिगड़ रहे हैं।

अमरकान्त ने अचकन के दामन से आंखें पोंछ लीं और सलीम की तरफ आता हुआ बोला–क्या मेरा नंबर आ गया?
सलीम ने उसके मुंह की तरफ देखा, तो उसकी आंखें लाल थीं। वह अपने जीवन में शायद ही कभी रोया हो चौंककर बोला–अरे तुम रो रहे हो क्या बात है–
अमरकान्त सांवले रंग का, छोटा–सा दुबला–पतला कुमार था। अवस्था बीस की हो गई थी पर अभी मसें भी न भीगी थीं। चौदह–पंद्रह साल का किशोर–सा लगता था। उसके मुख पर एक वेदनामय दृढ़ता, जो निराशा से बहुत कुछ मिलती–जुलती थी, अंकित हो रही थी, मानो संसार में उसका कोई नहीं है। इसके साथ ही उसकी मुद्रा पर कुछ ऐसी प्रतिभा, कुछ ऐसी मनस्विता थी कि एक बार उसे देखकर फिर भूल जाना कठिन था।
उसने मुस्कराकर कहा–कुछ नहीं जी, रोता कौन है–
'आप रोते हैं, और कौन रोता है। सच बताओ क्या हुआ?'
अमरकान्त की आंखें फिर भर आईं। लाख यत्न करने पर भी आंसू न रूक सके। सलीम समझ गया। उसका हाथ पकड़कर बोला–क्या फीस के लिए रो रहे हो– भले आदमी, मुझसे क्यों न कह दिया– तुम मुझे भी गैर समझते हो। कसम खुदा की, बड़े नालायक आदमी हो तुम। ऐसे आदमी को गोली मार देनी चाहिए दोस्तों से भी यह गैरियत चलो क्लास में, मैं फीस दिए देता हूं। जरा–सी बात के लिए घंटे–भर से रो रहे हो। वह तो कहो मैं आ गया, नहीं तो आज जनाब का नाम ही कट गया होता।
अमरकान्त को तसल्ली तो हुई पर अनुग्रह के बोझ से उसकी गर्दन दब गई। बोला –पंडितजी आज मान न जाएंगे?
सलीम ने खड़े होकर कहा–पंडितजी के बस की बात थोड़े ही है। यही सरकारी कायदा है। मगर हो तुम बड़े शैतान, वह तो खैरियत हो गई, मैं रुपये लेता आया था, नहीं खूब इम्तहान देते। देखो, आज एक ताजा गजल कही है। पीठ सहला देना :
आपको मेरी वफा याद आई,
खैर है आज यह क्या याद आई।
अमरकान्त का व्यथित चित्ता इस समय गजल सुनने को तैयार न था पर सुने बगैर काम भी तो नहीं चल सकता। बोला–नाजुक चीज है। खूब कहा है। मैं तुम्हारी जबान की सफाई पर जान देता हूं।
सलीम–यही तो खास बात है, भाई साहब लफ्जों की झंकार का नाम गजल नहीं है। दूसरा शेर सुनो :
फिर मेरे सीने में एक हूक उठी,
फिर मुझे तेरी अदा याद आई।
अमरकान्त ने फिर तारीफ की–लाजवाब चीज है। कैसे तुम्हें ऐसे शेर सूझ जाते हैं–
सलीम हंसा–उसी तरह, जैसे तुम्हें हिसाब और मजमून सूझ जाते हैं। जैसे एसोसिएशन में स्पीचें दे लेते हो। आओ, पान खाते चलें।
दोनों दोस्तों ने पान खाए और स्कूल की तरफ चले। अमरकान्त ने कहा–पंडितजी बड़ी डांट बताएंगे।
'फीस ही तो लेंगे'
'और जो पूछें, अब तक कहां थे?'
'कह देना, फीस लाना भूल गया था।'
'मुझसे न कहते बनेगा। मैं साफ–साफ कह दूंगा।'
तो तुम पिटोगे भी मेरे हाथ से'
संध्या समय जब छुट्टी हुई और दोनों मित्र घर चले, अमरकान्त ने कहा–तुमने आज मुझ पर जो एहसान किया है. . .
सलीम ने उसके मुंह पर हाथ रखकर कहा–बस खबरदार, जो मुंह से एक आवाज भी निकाली। कभी भूलकर भी इसका जिक्र न करना।
'आज जलसे में आओगे?'
'मजमून क्या है, मुझे तो याद नहीं?'
'अजी वही पश्चिमी सभ्यता है।'
'तो मुझे दो–चार प्वाइंट बता दो, नहीं तो मैं वहां कहूंगा क्या?'
'बताना क्या है– पश्चिमी सभ्यता की बुराइयां हम सब जानते ही हैं। वही बयान कर देना।'
'तुम जानते होगे, मुझे तो एक भी नहीं मालूम।'

'एक तो यह तालीम ही है। जहां देखो वहीं दूकानदारी। अदालत की दूकान, इल्म की दूकान, सेहत की दूकान। इस एक प्वाइंट पर बहुत कुछ कहा जा सकता है।'
'अच्छी बात है, आऊंगा।

भाग 2

अमरकान्त के पिता लाला समरकान्त बड़े उद्योगी पुरुष थे। उनके पिता केवल एक झोंपडी छोड़कर मरे थे मगर समरकान्त ने अपने बाहुबल से लाखों की संपत्ति जमा कर ली थी। पहले उनकी एक छोटी-सी हल्दी की आढ़त थी। हल्दी से गुड़ और चावल की बारी आई। तीन बरस तक लगातार उनके व्यापार का क्षेत्र बढ़ता ही गया। अब आढ़तें बंद कर दी थीं। केवल लेन-देन करते थे। जिसे कोई महाजन रुपये न दे, उसे वह बेखटके दे देते और वसूल भी कर लेते उन्हें आश्चर्य होता था कि किसी के रुपये मारे कैसे जाते हैं- ऐसा मेहनती आदमी भी कम होगा। घड़ी रात रहे गंगा-स्नान करने चले जाते और सूर्योदय के पहले विश्वनाथजी के दर्शन करके दूकान पर पहुंच जाते। वहां मुनीम को जरूरी काम समझाकर तगादे पर निकल जाते और तीसरे पहर लौटते। भोजन करके फिर दूकान आ जाते और आधी रात तक डटे रहते। थे भी भीमकाय। भोजन तो एक ही बार करते थे, पर खूब डटकर। दो-ढाई सौ मुग्दर के हाथ अभी तक फेरते थे। अमरकान्त की माता का उसके बचपन ही में देहांत हो गया था। समरकान्त ने मित्रों के कहने-सुनने से दूसरा विवाह कर लिया था। उस सात साल के बालक ने नई मां का बड़े प्रेम से स्वागत किया लेकिन उसे जल्द मालूम हो गया कि उसकी नई माता उसकी जिद और शरारतों को उस क्षमा-दृष्टि से नहीं देखतीं, जैसे उसकी मां देखती थीं। वह अपनी मां का अकेला लाड़ला लड़का था, बड़ा जिद्दी, बड़ा नटखट। जो बात मुंह से निकल जाती, उसे पूरा करके ही छोड़ता। नई माताजी बात-बात पर डांटती थीं। यहां तक कि उसे माता से द्वेष हो गया। जिस बात को वह मना करतीं, उसे वह अदबदाकर करता। पिता से भी ढीठ हो गया। पिता और पुत्र में स्नेह का बंधन न रहा। लालाजी जो काम करते, बेटे को उससे अरुचि होती। वह मलाई के प्रेमी थे बेटे को मलाई से अरुचि थी। वह पूजा-पाठ बहुत करते थे, लड़का इसे ढोंग समझता था। वह पहले सिरे के लोभी थे लड़का पैसे को ठीकरा समझता था।

मगर कभी-कभी बुराई से भलाई पैदा हो जाती है। पुत्र सामान्य रीति से पिता का अनुगामी होता है। महाजन का बेटा महाजन, पंडित का पंडित, वकील का वकील, किसान का किसान होता है मगर यहां इस द्वेष ने महाजन के पुत्र को महाजन का शत्रु बना दिया। जिस बात का पिता ने विरोध किया, वह पुत्र के लिए मान्य हो गई, और जिसको सराहा, वह त्याज्य। महाजनी के हथकंडे और षडयंत्र उसके सामने रोज ही रचे जाते थे। उसे इस व्यापार से घृणा होती थी। इसे चाहे पूर्व संस्कार कह लो पर हम तो यही कहेंगे कि अमरकान्त के चरित्र का निर्माण पिता-द्वेष के हाथों हुआ।

खैरियत यह हुई कि उसके कोई सौतेला भाई न हुआ। नहीं शायद वह घर से निकल गया होता। समरकान्त अपनी संपत्ति को पुत्र से ज्यादा मूल्यवान समझते थे। पुत्र के लिए तो संपत्ति की कोई जरूरत न थी पर संपत्ति के लिए पुत्र की जरूरत थी। विमाता की तो इच्छा यही थी कि उसे वनवास देकर अपनी चहेती नैना के लिए रास्ता साफ कर दे पर समरकान्त इस विषय में निश्चल रहे। मजा यह था कि नैना स्वयं भाई से प्रेम करती थी, और अमरकान्त के हृदय में अगर घर वालों के लिए कहीं कोमल स्थान था, तो वह नैना के लिए था। नैना की सूरत भाई से इतनी मिलती-जुलती थी, जैसे सगी बहन हो। इस अनुरूपता ने उसे अमरकान्त के और भी समीप कर दिया था। माता-पिता के इस दुर्व्यवहार को वह इस स्नेह के नशे में भुला दिया करता था। घर में कोई बालक न था और नैना के लिए किसी साथी का होना अनिवार्य था। माता चाहती थीं, नैना भाई से दूर-दूर रहे। वह अमरकान्त को इस योग्य न समझती थीं कि वह उनकी बेटी के साथ खेले। नैना की बाल-प्रकृति इस कूटनीति के झुकाए न झुकी। भाई-बहन में यह स्नेह यहां तक बढ़ा कि अंत में विमात्तत्व- ने मात्तत्वी को भी परास्त कर दिया। विमाता ने नैना को भी आंखों से गिरा दिया और पुत्र की कामना लिए संसार से विदा हो गईं।

अब नैना घर में अकेली रह गई। समरकान्त बाल-विवाह की बुराइयां समझते थे। अपना विवाह भी न कर सके। वृध्द-विवाह की बुराइयां भी समझते थे। अमरकान्त का विवाह करना जरूरी हो गया। अब इस प्रस्ताव का विरोध

कौन करता–
अमरकान्त की अवस्था उन्नीस साल से कम न थी पर देह और बुध्दि को देखते हुए, अभी किशोरावस्था ही में था। देह का दुर्बल, बुध्दि का मंद। पौधे को कभी मुक्त प्रकाश न मिला, कैसे बढ़ता, कैसे फैलता– बढ़ने और फैलने के दिन कुसंगति और असंयम में निकल गए। दस साल पढ़ते हो गए थे और अभी ज्यों–त्यों आठवें में पहुंचा था। किंतु विवाह के लिए यह बातें नहीं देखी जातीं। देखा जाता है धन, विशेषकर उस बिरादरी में, जिसका उद्यम ही व्यवसाय हो। लखनऊ के एक धनी परिवार से बातचीत चल पड़ी। समरकान्त की तो लार टपक पड़ी। कन्या के घर में विधवा माता के सिवा निकट का कोई संबधी न था, और धन की कहीं थाह नहीं। ऐसी कन्या बड़े भागों से मिलती है। उसकी माता ने बेटे की साध बेटी से पूरी की थी। त्याग की जगह भोग, शील की जगह तेज, कोमल की जगह तीव्र का संस्कार किया था। सिकुड़ने और सिमटने का उसे अभ्यास न था। और वह युवक–प्रकृति की युवती ब्याही गई युवती–प्रकृति के युवक से, जिसमें पुरुषार्थ का कोई गुण नहीं। अगर दोनों के कपड़े बदल दिए जाते, तो एक–दूसरे के स्थानापन्न हो जाते। दबा हुआ पुरुषार्थ ही स्त्रीत्व है।
विवाह हुए दो साल हो चुके थे पर दोनों में कोई सामंजस्य न था। दोनों अपने–अपने मार्ग पर चले जाते थे। दोनों के विचार अलग, व्यवहार अलग, संसार अलग। जैसे दो भिन्न जलवायु के जंतु एक पिंजरे में बंद कर दिए गए हों। हां, तभी अमरकान्त के जीवन में संयम और प्रयास की लगन पैदा हो गई थी। उसकी प्रकृति में जो ढीलापन, निर्जीवता और संकोच था वह कोमलता के रूप में बदलता जाता था। विद्याभ्यास में उसे अब रुचि हो गई थी। हालांकि लालाजी अब उसे घर के धंधो में लगाना चाहते थे–वह तार–वार पढ़ लेता था और इससे अधिक योग्यता की उनकी समझ में जरूरत न थी–पर अमरकान्त उस पथिक की भांति, जिसने दिन विश्राम में काट दिया हो, अब अपने स्थान पर पहुंचने के लिए दूने वेग से कदम बढ़ाए चला जाता था।

स्कूल से लौटकर अमरकान्त नियमानुसार अपनी छोटी कोठरी में जाकर चरखे पर बैठ गया। उस विशाल भवन में, जहां बारात ठहर सकती थी, उसने अपने लिए यही छोटी–सी कोठरी पसंद की थी। इधर कई महीने से उसने दो घंटे रोज सूत कातने की प्रतिज्ञा कर ली थी और पिता के विरोध करने पर भी उसे निभाए जाता था।
मकान था तो बहुत बड़ा मगर निवासियों की रक्षा के लिए उतना उपयुक्त न था, जितना धन की रक्षा के लिए। नीचे के तल्ले में कई बड़े–बड़े कमरे थे, जो गोदाम के लिए बहुत अनुकूल थे। हवा और प्रकाश का कहीं रास्ता नहीं। जिस रास्ते से हवा और प्रकाश आ सकता है, उसी रास्ते से चोर भी तो आ सकता है। चोर की शंका उसकी एक–एक ईंट से टपकती थी। ऊपर के दोनों तल्ले हवादार और खुले हुए थे। भोजन नीचे बनता था। सोना–बैठना ऊपर होता था। सामने सड़क पर दो कमरे थे। एक में लालाजी बैठते थे, दूसरे में मुनीम। कमरों के आगे एक सायबान था, जिसमें गाय बंधती थी। लालाजी पक्के गोभक्त थे।
अमरकान्त सूत कातने में मग्न था कि उसकी छोटी बहन नैना आकर बोली–क्या हुआ भैया, फीस जमा हुई या नहीं–मेरे पास बीस रुपये हैं, यह ले लो। मैं कल और किसी से मांग लाऊंगी।
अमर ने चरखा चलाते हुए कहा–आज ही तो फीस जमा करने की तारीख थी। नाम कट गया। अब रुपये लेकर क्या करूंगा–
नैना रूप–रंग में अपने भाई से इतनी मिलती थी कि अमरकान्त उसकी साड़ी पहन लेता, तो यह बतलाना मुश्किल हो जाता कि कौन यह है कौन वह हां, इतना अंतर अवश्य था कि भाई की दुर्बलता यहां सुकुमारता बनकर आकर्षक हो गई थी।
अमर ने दिल्लगी की थी पर नैना के चेहरे रंग उड़ गया। बोली–तुमने कहा नहीं, नाम न काटो, मैं दो–एक दिन में दे दूंगा–
अमर ने उसकी घबराहट का आनंद उठाते हुए कहा–कहने को तो मैंने सब कुछ कहा लेकिन सुनता कौन था–
नैना ने रोष के भाव से कहा–मैं तो तुम्हें अपने कड़े दे रही थी, क्यों नहीं लिए–
अमर ने हंसकर पूछा–और जो दादा पूछते, तो क्या होता–
'दादा से बतलाती ही क्यों?'
अमर ने मुंह लंबा करके कहा–मैं चोरी से कोई काम नहीं करना चाहता, नैना अब खुश हो जाओ, मैंने फीस जमा कर दी।

नैना को विश्वास न आया, बोली–फीस नहीं, वह जमा कर दी। तुम्हारे पास रुपये कहां थे?'
'नहीं नैना, सच कहता हूं, जमा कर दी।'
'रुपये कहां थे?'
'एक दोस्त से ले लिए।'
'तुमने मांगे कैसे?'
'उसने आप–ही–आप दे दिए, मुझे मांगने न पड़े।'
'कोई बड़ा सज्जन होगा।'
'हां, है तो सज्जन, नैना जब फीस जमा होने लगी तो मैं मारे शर्म के बाहर चला गया। न जाने क्यों उस वक्त मुझे रोना आ गया। सोचता था, मैं ऐसा गया–बीता हूं कि मेरे पास चालीस रुपये नहीं। वह मित्र जरा देर में मुझे बुलाने आया। मेरी आंखें लाल थीं। समझ गया। तुरंत जाकर फीस जमा कर दी। तुमने कहां पाए ये बीस रुपये?'
'यह न बताऊंगी।'
नैना ने भाग जाना चाहा। बारह बरस की यह लज्जाशील बालिका एक साथ ही सरल भी थी और चतुर भी। उसे ठफना सहज न था। उससे अपनी चिंताओं को छिपाना कठिन था।
अमर ने लपककर उसका हाथ पकड़ लिया और बोला–जब तक बताओगी नहीं, मैं जाने न दूंगा। किसी से कहूंगा नहीं, सच कहता हूं।
नैना झेंपती हुई बोली– दादा से लिए।
अमरकान्त ने बेदिली के साथ कहा– तुमने उनसे नाहक मांगे, नैना जब उन्होंने मुझे इतनी निर्दयता से दुत्कार दिया, तो मैं नहीं चाहता कि उनसे एक पैसा भी मांगूं। मैंने तो समझा था, तुम्हारे पास कहीं पड़े होंगे अगर मैं जानता कि तुम भी दादा से ही मांगोगी तो साफ कह देता, मुझे रुपये की जरूरत नहीं। दादा क्या बोले–
नैना सजल नेत्र होकर बोली–बोले तो नहीं। यही कहते रहे कि करना–धरना तो कुछ नहीं, रोज रुपये चाहिए, कभी फीस कभी किताब कभी चंदा। फिर मुनीमजी से कहा, बीस रुपये दे दो। बीस रुपये फिर देना।
अमर ने उत्तोजित होकर कहा–तुम रुपये लौटा देना, मुझे नहीं चाहिए।
नैना सिसक–सिसककर रोने लगी। अमरकान्त ने रुपये जमीन पर फेंक दिए थे और वह सारी कोठरी में बिखरे पड़े थे। दोनों में से एक भी चुनने का नाम न लेता था। सहसा लाला समरकान्त आकर द्वार पर खड़े हो गए। नैना की सिसकियां बंद हो गईं और अमरकान्त मानो तलवार की चोट खाने के लिए अपने मन को तैयार करने लगा। लाला जो दोहरे बदन के दीर्घकाय मनुष्य थे। सिर से पांव तक सेठ–वही खल्वाट मस्तक, वही फूले हुए कपोल, वही निकली हुई तोंद। मुख पर संयम का तेज था, जिसमें स्वार्थ की गहरी झलक मिली हुई थी। कठोर स्वर में बोले–चरखा चला रहा है। इतनी देर में कितना सूत काता– होगा दो–चार रुपये का–
अमरकान्त ने गर्व से कहा–चरखा रुपये के लिए नहीं चलाया जाता।
'और किसलिए चलाया जाता है।'
'यह आत्म–शुध्दि का एक साधन है।'
समरकान्त के घाव पर जैसे नमक पड़ गया। बोले–यह आज नई बात मालूम हुई। तब तो तुम्हारे ऋषि होने में कोई संदेह नहीं रहा, मगर साधन के साथ कुछ घर–गृहस्थी का काम भी देखना होता है। दिन–भर स्कूल में रहो, वहां से लौटो तो चरखे पर बैठो, रात को तुम्हारी स्त्री–पाठशाला खुले, संध्ये समय जलसे हों, तो घर का धंधा कौन करे– मैं बैल नहीं हूं। तुम्हीं लोगों के लिए इस जंजाल में फंसा हुआ हूं। अपने ऊपर लाद न ले जाऊंगा। तुम्हें कुछ तो मेरी मदद करनी चाहिए। बड़े नीतिवान बनते हो, क्या यह नीति है कि बूढ़ा बाप मरा करे और जवान बेटा उसकी बात भी न पूछे–
अमरकान्त ने उद्दंडता से कहा–मैं तो आपसे बार–बार कह चुका, आप मेरे लिए कुछ न करें। मुझे धन की जरूरत नहीं। आपकी भी वृध्दावस्था है। शांतचित्त होकर भगवत्–भजन कीजिए।
समरकान्त तीखे शब्दों में बोले–धन न रहेगा लाला, तो भीख मांगोगे। यों चैन से बैठकर चरखा न चलाओगे। यह तो न होगा, मेरी कुछ मदद करो, पुरुषार्थहीन मनुष्यों की तरह कहने लगे, मुझे धन की जरूरत नहीं। कौन है, जिसे धन की जरूरत नहीं– साधु–संन्यासी तक तो पैसों पर प्राण देते हैं। धन बड़े पुरुषार्थ से मिलता है। जिसमें पुरुषार्थ नहीं, वह क्या धन कमाएगा– बड़े–बड़े तो धन की उपेक्षा कर ही नहीं सकते, तुम किस खेत की मूली हो

अमर ने उसी वितंडा भाव से कहा–संसार धन के लिए प्राण दे, मुझे धन की इच्छा नहीं। एक मजूर भी धर्म और आत्मा की रक्षा करते हुए जीवन का निर्वाह कर सकता है। कम–से–कम मैं अपने जीवन में इसकी परीक्षा करना चाहता हूं।

लालाजी को वाद–विवाद का अवकाश न था। हारकर बोले–अच्छा बाबा, कर लो खूब जी भरकर परीक्षा लेकिन रोज–रोज रुपये के लिए मेरा सिर न खाया करो। मैं अपनी गाढ़ी कमाई तुम्हारे व्यसन के लिए नहीं लुटाना चाहता।

लालाजी चले गए। नैना कहीं एकांत में जाकर खूब रोना चाहती थी पर हिल न सकती थी और अमरकान्त ऐसा विरक्त हो रहा था, मानो जीवन उसे भार हो रहा है।

उसी वक्त महरी ने ऊपर से आकर कहा–भैया, तुम्हें बहूजी बुला रही हैं।

अमरकान्त ने बिगड़कर कहा–जा कह दे, फुर्सत नहीं है। चली वहां से–बहूजी बुला रही हैं।

लेकिन जब महरी लौटने लगी, तो उसने अपने तीखेपन पर लज्जित होकर कहा–मैंने तुम्हें कुछ नहीं कहा है सिल्लो कह दो, अभी आता हूं। तुम्हारी रानीजी क्या कर रही हैं–

सिल्लो का पूरा नाम था कौशल्या। सीतला में पति, पुत्र और एक आंख जाती रही थी, तब से विक्षिप्त–सी हो गई थी। रोने की बात पर हंसती, हंसने की बात पर रोती। घर के और सभी प्राणी, यहां तक की नौकर–चाकर तक उसे डांटते रहते थे। केवल अमरकान्त उसे मनुष्य समझता था। कुछ स्वस्थ होकर बोली–बैठी कुछ लिख रही हैं। लालाजी चीखते थे इसी से तुम्हें बुला भेजा।

अमर जैसे गिर पड़ने के बाद गर्द झाड़ता हुआ, प्रसन्न मुख ऊपर चला। सुखदा अपने कमरे के द्वार पर खड़ी थी। बोली–तुम्हारे तो दर्शन ही दुर्लभ हो जाते हैं। स्कूल से आकर चरखा ले बैठते हो। क्यों नहीं मुझे घर भेज देते– जब मेरी जरूरत समझना, बुला भेजना। अबकी आए मुझे छः महीने हुए। मीयाद पूरी हो गई। अब तो रिहाई हो जानी चाहिए।

यह कहते हुए उसने एक तश्तरी में कुछ नमकीन और कुछ मिठाई लाकर मेज पर रख दी और अमर का हाथ पकड़ कमरे में ले जाकर कुरसी पर बैठा दिया।

यह कमरा और सब कमरों से बड़ा, हवादार और सुसज्जित था। दरी का गर्श था, उस पर करीने से कई गद्दार और सादी कुरसियां लगी हुई थीं। बीच में एक छोटी–सी नक्काशीदार गोल मेज थी। शीशे की आल्मारियों में सजिल्द पुस्तकें सजी हुई थीं। आलों पर तरह–तरह के खिलौने रखे हुए थे। एक कोने में मेज पर हारमोनियम रखा हुआ था। दीवारों पर धुरंधर, रवि वर्मा और कई चित्रकारों की तस्वीरें शोभा दे रही थीं। दो–तीन पुराने चित्र भी थे। कमरे की सजावट से सुरुचि और संपन्नता का आभास होता था।

अमरकान्त का सुखदा से विवाह हुए दो साल हो चुके थे। सुखदा दो बार तो एक–एक महीना रहकर चली गई थी। अबकी उसे आए छः महीने हो गए थे मगर उनका स्नेह अभी तक ऊपर–ही–ऊपर था। गहराइयों में दोनों एक–दूसरे से अलग–अलग थे। सुखदा ने कभी अभाव न जाना था, जीवन की कठिनाइयां न सही थीं। वह जाने–माने मार्ग को छोड़कर अनजान रास्ते पर पांव रखते डरती थी। भोग और विलास को वह जीवन की सबसे मूल्यवान वस्तु समझती थी और उसे हृदय से लगाए रहना चाहती थी। अमरकान्त को वह घर के कामकाज की ओर खींचने का प्रयास करती रहती थी। कभी समझाती थी, कभी रूठती थी, कभी बिगड़ती थी। सास के न रहने से वह एक प्रकार से घर की स्वामिनी हो गई थी। बाहर के स्वामी लाला समरकान्त थे पर भीतर का संचालन सुखदा ही के हाथों में था। किंतु अमरकान्त उसकी बातों को हंसी में टाल देता। उस पर अपना प्रभाव डालने की कभी चेष्टा न करता। उसकी विलासप्रियता मानो खेतों में हौवे की भांति उसे डराती रहती थी। खेत में हरियाली थी, दाने थे, लेकिन वह हौवा निश्चल भाव से दोनों हाथ फैलाए खड़ा उसकी ओर घूरता रहता था। अपनी आशा और दुराशा, हार और जीत को वह सुखदा से बुराई की भांति छिपाता था। कभी–कभी उसे घर लौटने में देर हो जाती, तो सुखदा व्यंग्य करने से बाज न आती थी–हां, यहां कौन अपना बैठा हुआ है बाहर के मजे घर मेंकहां और यह तिरस्कार, किसान की कड़े–कड़े की भांति हौवे के भय को और भी उत्तोजित कर देती थी। वह उसकी खुशामद करता, अपने सिध्दांतों को लंबी–से–लंबी रस्सी देता पर सुखदा इसे उसकी दुर्बलता समझकर ठुकरा देती थी। वह पति को दया–भाव से देखती थी, उसकी त्यागमयी प्रवृत्ति का अनादर न करती थी पर इसका तथ्य न समझ सकती थी। वह अगर सहानुभूति की भिक्षा मांगता, उसके सहयोग के लिए हाथ फैलाता, तो शायद वह उसकी उपेक्षा न करती। अपनी मुठ्ठी बंद करके, अपनी

मिठाई आप खाकर, वह उसे रूला देता। वह भी अपनी मुठ्ठी बंद कर लेती थी और अपनी मिठाई आप खाती थी। दोनों आपस में हंसते-बोलते थे, साहित्य और इतिहास की चर्चा करते थे लेकिन जीवन के गूढ़ व्यापारों में पृथक् थे। दूध और पानी का मेल नहीं, रेत और पानी का मेल था जो एक क्षण के लिए मिलकर पृथक् हो जाता था।

अमर ने इस शिकायत की कोमलता या तो समझी नहीं, या समझकर उसका रस न ले सका। लालाजी ने जो आघात किया था, अभी उसकी आत्मा उस वेदना से तड़प रही थी। बोला-मैं भी यही उचित समझता हूं। अब मुझे पढ़ना छोड़कर जीविका की फिक्र करनी पड़ेगी।
सुखदा ने खीझकर कहा-हां, ज्यादा पढ़ लेने से सुनती हूं, आदमी पागल हो जाता है।
अमर ने लड़ने के लिए यहां भी आस्तीनें चढ़ा लीं-तुम यह आक्षेप व्यर्थ कर रही हो। पढ़ने से मैं जी नहीं चुराता लेकिन इस दशा में पढ़ना नहीं हो सकता। आज स्कूल में मुझे जितना लज्जित होना पड़ा, वह मैं ही जानता हूं। अपनी आत्मा की हत्या करके पढ़ने से भूखा रहना कहीं अच्छा है।
सुखदा ने भी अपने शस्त्र संभाले। बोली-मैं तो समझती हूं कि घड़ी-दो घड़ी दूकान पर बैठकर भी आदमी बहुत कुछ पढ़ सकता है। चरखे और जलसों में जो समय देते हो, वह दूकान पर दो, तो कोई बुराई न होगी। फिर जब तुम किसी से कुछ कहोगे नहीं तो कोई तुम्हारे दिल की बातें कैसे समझ लेगा- मेरे पास इस वक्त भी एक हजार रुपये से कम नहीं। वह मेरे रुपये हैं, मैं उन्हें उड़ा सकती हूं। तुमने मुझसे चर्चा तक न की। मैं बुरी सही, तुम्हारी दुश्मन नहीं। आज लालाजी की बातें सुनकर मेरा रक्त खौल रहा था। चालीस रुपये के लिए इतना हंगामा तुम्हें जितनी जरूरत हो, मुझसे लो, मुझसे लेते तुम्हारे आत्म-सम्मान को चोट लगती हो, अम्मां से लो। वह अपने को धन्य समझेंगी। उन्हें इसका अरमान ही रह गया कि तुम उनसे कुछ मांगते। मैं तो कहती हूं, मुझे लेकर लखनऊ चले चलो और निश्चिंमत होकर पढ़ो। अम्मां तुम्हें इंग्लैंड भेज देंगी। वहां से अच्छी डिग्री ला सकते हो।
सुखदा ने निष्कपट भाव से यह प्रस्ताव किया था। शायद पहली बार उसने पति से अपने दिल की बात कही अमरकान्त को बुरा लगा। बोला-मुझे डिग्री इतनी प्यारी नहीं है कि उसके लिए ससुराल की रोटियां तोड़ूं अगर मैं अपने परिश्रम से धनोपार्जन करके पढ़ सकूंगा, तो पढ़ूंगा नहीं कोई धंधा देखूंगा। मैं अब तक व्यर्थ ही शिक्षा के मोह में पड़ा हुआ था। कॉलेज के बाहर भी अधययनशील आदमी बहुत-कुछ सीख सकता है। मैं अभिमान नहीं करता लेकिन साहित्य और इतिहास की जितनी पुस्तकें इन दो-तीन सालों में मैंने पढ़ी हैं, शायद ही मेरे कॉलेज में किसी ने पढ़ी हों
सुखदा ने इस अप्रिय विषय का अंत करने के लिए कहा-अच्छा, नाश्ता तो कर लो। आज तो तुम्हारी मीटिंग है। नौ बजे के पहले क्यों लौटने लगे- मैं तो टाकीज में जाऊंगी। अगर तुम ले चलो, तो मैं तुम्हारे साथ चलने को तैयार हूं।
अमर ने रूखेपन से कहा-मुझे टाकीज जाने की फुरसत नहीं है। तुम जा सकती हो।
'फिल्मों से भी बहुत-कुछ लाभ उठाया जा सकता है।'
'तो मैं तुम्हें मना तो नहीं करता।'
'तुम क्यों नहीं चलते?'
'जो आदमी कुछ उपार्जन न करता हो, उसे सिनेमा देखने का अधिकार नहीं। मैं उसी संपत्ति को अपना समझता हूं, जिसे मैंने परिश्रम से कमाया है।'
कई मिनट तक दोनों गुम बैठे रहे। जब अमर जलपान करके उठा, तो सुखदा ने सप्रेम आग्रह से कहा-कल से संध्या समय दूकान पर बैठा करो। कठिनाइयों पर विजय पाना पुरुषार्थी मनुष्यों का काम है अवश्य मगर कठिनाइयों की सृष्टि करना, अनायास पांव में कांटे चुभाना कोई बुध्दिमानी नहीं है।
अमरकान्त इस आदेश का आशय समझ गया पर कुछ बोला नहीं। विलासिनी संकटों से कितना डरती है यह चाहती है, मैं भी गरीबों का खून चूसूं उनका गला काटूं यह मुझसे न होगा।
सुखदा उसके दृष्टिकोण का समर्थन करके कदाचित् उसे जीत सकती थी। उधर से हटाने की चेष्टा करके वह उसके संकल्प को और भी दृढ़ कर रही थी। अमरकान्त उससे सहानुभूति करके अपने अनुकूल बना सकता था पर शुष्क त्याग का रूप दिखाकर उसे भयभीत कर रहा था।

अमरकान्त मैटि'कुलेशन की परीक्षा में प्रांत में सर्वप्रथम आया पर अवस्था अधिक होने के कारण छात्रवृत्ति न पा सका। इससे उसे निराशा की जगह एक तरह का संतोष हुआ क्योंकि वह अपने मनोविकारों को कोई टिकौना न देना चाहता था। उसने कई बड़ी-बड़ी कोठियों में पत्र-व्यवहार करने का काम उठा लिया। धनी पिता का पुत्र था, यह

काम उसे आसानी से मिल गया। लाला समरकान्त की व्यवसाय-नीति से प्राय: उनकी बिरादरी वाले जलते थे और पिता-पुत्र के इस वैमनस्य का तमाशा देखना चाहते थे। लालाजी पहले तो बहुत बिगड़े। उनका पुत्र उन्हीं के सहवर्गियों की सेवा करे, यह उन्हें अपमानजनक जान पड़ा पर अमर ने उन्हें सुझाया कि वह यह काम केवल व्यावसायिक ज्ञानोपार्जन के भाव से कर रहा है। लालाजी ने भी समझा, कुछ-न-कुछ सीख ही जाएगा। विरोध करना छोड़ दिया। सुखदा इतनी आसानी से मानने वाली न थी। एक दिन दोनों में इसी बात पर झड़प हो गई।

सुखदा ने कहा-तुम दस-दस, पांच-पांच रुपये के लिए दूसरों की खुशामद करते फिरते हो तुम्हें शर्म भी नहीं आती

अमर ने शांतिपूर्वक कहा-काम करके कुछ उपार्जन करना शर्म की बात नहीं : दूसरों का मुंह ताकना शर्म की बात है।

'तो ये धनियों के जितने लड़के हैं, सभी बेशर्म हैं?'

'हैं ही, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। अब तो लालाजी मुझे खुशी से भी रुपये दें तो न लूं। जब तक अपनी सामर्थ्य का ज्ञान न था, तब तक उन्हें कष्ट देता था। जब मालूम हो गया कि मैं अपने खर्च भर को कमा सकता हूं, तो किसी के सामने हाथ क्यों फैलाऊं?'

सुखदा ने निर्दयता के साथ कहा-तो जब तुम अपने पिता से कुछ लेना अपमान की बात समझते हो, तो मैं क्यों उनकी आश्रित बनकर रहूं- इसका आशय तो यही हो सकता है कि मैं भी किसी पाठशाला में नौकरी करूं या सीने-पिरोने का धंधा उठाऊं-

अमरकान्त ने संकट में पड़कर कहा-तुम्हारे लिए इसकी जरूरत नहीं।

'क्यों मैं खाती-पहनती हूं, गहने बनवाती हूं, पुस्तकें लेती हूं, पत्रिकाएं मंगवाती हूं, दूसरों ही की कमाई पर तो-

इसका तो यह आशय भी हो सकता है कि मुझे तुम्हारी कमाई पर भी कोई अधिकार नहीं। मुझे खुद परिश्रम करके कमाना चाहिए।'

अमरकान्त को संकट से निकलने की एक युक्ति सूझ गई-अगर दादा, या तुम्हारी अम्मांजी तुमसे चिढ़ें और मैं भी ताने दूं, तब निस्संदेह तुम्हें खुद धन कमाने की जरूरत पड़ेगी।

'कोई मुंह से न कहे पर मन में तो समझ सकता है। अब तक तो मैं समझती थी, तुम पर मेरा अधिकार है। तुमसे जितना चाहूंगी, लड़कर ले लूंगी लेकिन अब मालूम हुआ, मेरा कोई अधिकार नहीं। तुम जब चाहो, मुझे जवाब दे सकते हो। यही बात है या कुछ और?'

अमरकान्त ने हारकर कहा-तो तुम मुझे क्या करने को कहती हो- दादा से हर महीने रुपये के लिए लड़ता रहूं-

सुखदा बोली-हां, मैं यही चाहती हूं। यह दूसरों की चाकरी छोड़ दो और घर का धंधा देखो। जितना समय उधर देते हो उतना ही समय घर के कामों में दो।

'मुझे इस लेन-देन, सूद-ब्याज से घृणा है।'

सुखदा मुस्कराकर बोली-यह तो तुम्हारा अच्छा तर्क है। मरीज को छोड़ दो, वह आप-ही-आप अच्छा हो जाएगा। इस तरह मरीज मर जाएगा, अच्छा न होगा। तुम दूकान पर जितनी देर बैठोगे, कम-से-कम उतनी देर तो यह घृणित व्यापार न होने दोगे। यह भी तो संभव है कि तुम्हारा अनुराग देखकर लालाजी सारा काम तुम्हीं को सौंप दें। तब तुम अपनी इच्छानुसार इसे चलाना। अगर अभी इतना भार नहीं लेना चाहते, तो न लो लेकिन लालाजी की मनोवृत्ति पर तो कुछ-न-कुछ प्रभाव डाल ही सकते हो। वह वही कर रहे हैं जो अपने-अपने ढंग से सारा संसार कर रहा है। तुम विरक्त होकर उनके विचार और नीति को नहीं बदल सकते। और अगर तुम अपना ही राग अलापोगे, तो मैं कहे देती हूं, अपने घर चली जाऊंगी। तुम जिस तरह जीवन व्यतीत करना चाहते हो, वह मेरे मन की बात नहीं। तुम बचपन से ठुकराए गए हो और कष्ट सहने में अभ्यस्त हो। मेरे लिए यह नया अनुभव है।

अमरकान्त परास्त हो गया। इसके कई दिन बाद उसे कई जवाब सूझे पर इस वक्त वह कुछ जवाब न दे सका। नहीं, उसे सुखदा की बातें न्याय-संगत मालूम हुईं। अभी तक उसकी स्वतंत्र कल्पना का आधार पिता की कृपणता थी। उसका अंकुर विमाता की निर्ममता ने जमाया था। तर्क या सिध्दांत पर उसका आधार न था और वह दिन तो अभी दूर, बहुत दूर था, जब उसके चित्ता की वृत्ति ही बदल जाए। उसने निश्चय किया-पत्र-व्यवहार का काम छोड़ दूंगा। दूकान पर बैठने में भी उसकी आपत्ति उतनी तीव्र न रही। हां, अपनी शिक्षा का खर्च वह पिता से लेने पर किसी तरह अपने मन को न दबा सका। इसके लिए उसे कोई दूसरा ही गुप्त मार्ग खोजना पड़ेगा। सुखदा से कुछ दिनों के लिए उसकी संधि-सी हो गई।

इसी बीच में एक और घटना हो गई, जिसने उसकी स्वतन्त्र कल्पना को भी शिथिल कर दिया।

सुखदा इधर साल भर से मैके न गई थी। विधवा माता बार-बार बुलाती थीं, लाला समरकान्त भी चाहते थे कि दो-एक महीने के लिए हो आए पर सुखदा जाने का नाम न लेती थी। अमरकान्त की ओर से निश्चिं त न हो सकती थी। वह ऐसे घोड़े पर सवार थी, जिसे नित्य फेरना लाजिमी था, दस-पांच दिन बंधा रहा, तो फिर पुट्ठे पर हाथ ही न रखने देगा। इसीलिए वह अमरकान्त को छोड़कर न जाती थी।

अंत में माता ने स्वयं काशी आने का निश्चय किया। उनकी इच्छा अब काशीवास करने की भी हो गई। एक महीने तक अमरकान्त उनके स्वागत की तैयारियों में लगा रहा। गंगातट पर बड़ी मुश्किल से पसंद का घर मिला, जो न बहुत बड़ा था न बहुत छोटा। उसकी सफाई और सफेदी में कई दिन लगे। गृहस्थी की सैकड़ों ही चीजें जमा करनी थीं। उसके नाम सास ने एक हजार का बीमा भेज दिया था। उसने कतरब्योंत से उसके आधो ही में सारा प्रबंध कर दिया। पाई-पाई का हिसाब लिखा तैयार था। जब सास जी प्रयाग का स्नान करती हुईं, माघ में काशी पहुंचीं, तो वहां का सुप्रबंध देखकर बहुत प्रसन्न हुईं।

अमरकान्त ने बचत के पांच सौ रुपये उनके सामने रख दिए।

रेणुकादेवी ने चकित होकर कहा-क्या पांच सौ ही में सब कुछ हो गया- मुझे तो विश्वास नहीं आता।

'जी नहीं, पांच सौ ही खर्च हुए।'

'यह तो तुमने इनाम देने का काम किया है। यह बचत के रुपये तुम्हारे हैं।'

अमर ने झेंपते हुए कहा-जब मुझे जरूरत होगी, आपसे मांग लूंगा। अभी तो कोई ऐसी जरूरत नहीं है।

रेणुकादेवी रूप और अवस्था से नहीं, विचार और व्यवहार से वृध्दा थीं। ज्ञान और व्रत में उनकी आस्था न थी लेकिन लोकमत की अवहेलना न कर सकती थीं। विधवा का जीवन तप का जीवन है। लोकमत इसके विपरीत कुछ नहीं देख सकता। रेणुका को विवश होकर धर्म का स्वांग भरना पड़ता था किंतु जीवन बिना किसी आधार के तो नहीं रह सकता। भोग-विलास, सैर-तमाशे से आत्मा उसी भांति संतुष्ट नहीं होती, जैसे कोई चटनी और अचार खाकर अपनी क्षुधा को शांत नहीं कर सकता। जीवन किसी तथ्य पर ही टिक सकता है। रेणुका के जीवन में यह आधार पशु-प्रेम था। वह अपने साथ पशु-पक्षियों का एक चिड़ियाघर लाई थीं। तोते, मैने, बंदर, बिल्ली, गाएं, हिरन, मोर, कुत्तो आदि पाल रखे थे और उन्हीं के सुख-दुख में सम्मिलित होकर जीवन में सार्थकता का अनुभव करती थीं। हरएक का अलग-अलग नाम था, रहने का अलग-अलग स्थान था, खाने-पीने के अलग-अलग बर्तन थे। अन्य रईसों की भांति उनका पशु-प्रेम नुमायशी, व्शनेबल या मनोरंजक न था। अपने पशु-पक्षियों में उनकी जान बसती थी। वह उनके बच्चों को उसी मात्त्वा -भरे स्नेह से खेलाती थीं मानो अपने नाती-पोते हों। ये पशु भी उनकी बातें, उनके इशारे, कुछ इस तरह समझ जाते थे कि आश्चर्य होता था।

दूसरे दिन मां-बेटी में बातें होने लगीं।

रेणुका ने कहा-तुझे ससुराल इतनी प्यारी हो गई-

सुखदा लज्जित होकर बोली-क्या करूं अम्मां, ऐसी उलझन में पड़ी हूं कि कुछ सूझता ही नहीं। बाप-बेटे में बिलकुल नहीं बनती। दादाजी चाहते हैं, वह घर का धंधा देखें। वह कहते हैं, मुझे इस व्यवसाय से घृणा है। मैं चली जाती, तो न जाने क्या दशा होती। मुझे बराबर खटका लगा रहता है कि वह देश-विदेश की राह न लें। तुमने मुझे कुएं में ढकेल दिया और क्या कहूं?

रेणुका चिंतित होकर बोलीं-मैंने तो अपनी समझ में घर-वर दोनों ही देखभाल कर विवाह किया था मगर तेरी तकदीर को क्या करती- लड़के से तेरी अब पटती है, या वही हाल है-

सुखदा फिर लज्जित हो गई। उसके दोनों कपोल लाल हो गए। सिर झुकाकर बोली-उन्हें अपनी किताबों और सभाओं से छुट्टी नहीं मिलती।

'तेरी जैसी रूपवती एक सीधे-सादे छोकरे को भी न संभाल सकी- चाल-चलन का कैसा है?'

सुखदा जानती थी, अमरकान्त में इस तरह की कोई दुर्वासना नहीं है पर इस समय वह इस बात को निश्चयात्मक रूप से न कह सकी। उसके नारीत्व पर धब्बा आता था। बोली-मैं किसी के दिल का हाल क्या जानूं, अम्मां इतने दिन हो गए, एक दिन भी ऐसा न हुआ होगा कि कोई चीज लाकर देते। जैसे चाहूं रहूं, उनसे कोई मतलब ही नहीं।

रेणुका ने पूछा-तू कभी कुछ पूछती है, कुछ बनाकर खिलाती है, कभी उसके सिर में तेल डालती है-

सुखदा ने गर्व से कहा–जब वह मेरी बात नहीं पूछते तो मुझे क्या गरज पड़ी है वह बोलते हैं, तो मैं बोलती हूं। मुझसे किसी की गुलामी नहीं होगी।
रेणुका ने ताड़ना दी–बेटी, बुरा न मानना, मुझे बहुत–कुछ तेरा ही दोष दीखता है। तुझे अपने रूप का गर्व है। तू समझती है, वह तेरे रूप पर मुग्ध होकर तेरे पैरों पर सिर रगड़ेगा। ऐसे मर्द होते हैं, यह मैं जानती हूं पर वह प्रेम टिकाऊ नहीं होता। न जाने तू क्यों उससे तनी रहती है– मुझे तो वह बड़ा गरीब और बहुत ही विचारशील मालूम होता है। सच कहती हूं, मुझे उस पर दया आती है। बचपन में तो बेचारे की मां मर गई। विमाता मिली, वह डाइन। बाप हो गया शत्रु। घर को अपना घर न समझ सका। जो हृदय चिंता–भार से इतना दबा हुआ हो, उसे पहले स्नेह और सेवा से पोला करने के बाद तभी प्रेम का बीज बोया जा सकता है।
सुखदा चिढ़कर बोली–वह चाहते हैं, मैं उनके साथ तपस्विनी बनकर रहूं। रूखा–सूखा खाऊं, मोटा–झोटा पहनूं और वह घर से अलग होकर मेहनत और मजूरी करें। मुझसे यह न होगा, चाहे सदैव के लिए उनसे नाता ही टूट जाए। वह अपने मन की करेंगे, मेरे आराम–तकलीफ की बिलकुल परवाह न करेंगे, तो मैं भी उनका मुंह न जोहूंगी।
रेणुका ने तिरस्कार भरी चितवनों से देखा और बोली–और अगर आज लाला समरकान्त का दीवाला पिट जाए–
सुखदा ने इस संभावना की कभी कल्पना ही न की थी।
विमूढ़ होकर बोली–दीवाला क्यों पिटने लगा–
'ऐसा संभव तो है।'
सुखदा ने मां की संपत्ति का आश्रय न लिया। वह न कह सकी,'तुम्हारे पास जो कुछ है, वह भी तो मेरा ही है।' आत्म–सम्मान ने उसे ऐसा न कहने दिया। मां के इस निर्दय प्रश्न पर झुंझलाकर बोली–जब मौत आती है, तो आदमी मर जाता है। जान–बूझकर आग में नहीं कूदा जाता।
बातों–बातों में माता को ज्ञात हो गया कि उनकी संपत्ति का वारिस आने वाला है। कन्या के भविष्य के विषय में उन्हें बड़ी चिंता हो गई थी। इस संवाद ने उस चिंता का शमन कर दिया।
उन्होंने आनंद विह्वल होकर सुखदा को गले लगा लिया।

अमरकान्त ने अपने जीवन में माता के स्नेह का सुख न जाना था। जब उसकी माता का अवसान हुआ, तब वह बहुत छोटा था। उस दूर अतीत की कुछ धुंधली–सी और इसीलिए अत्यंत मनोहर और सुखद स्मृतियां शेष थीं। उसका वेदनामय बाल–रूदन सुनकर जैसे उसकी माता ने रेणुकादेवी के रूप में स्वर्ग से आकर उसे गोद में उठा लिया। बालक अपना रोना–धोना भूल गया और उस ममता–भरी गोद में मुंह छिपाकर दैवी–सुख लूटने लगा। अमरकान्त नहीं–नहीं करता रहता और माता उसे पकड़कर उसके आगे मेवे और मिठाइयां रख देतीं। उसे इंकार न करते बनता। वह देखता, माता उसके लिए कभी कुछ पका रही हैं, कभी कुछ, और उसे खिलाकर कितनी प्रसन्न होती हैं, तो उसके हृदय में श्रध्दा की एक लहर–सी उठने लगती है। वह कॉलेज से लौटकर सीधे रेणुका के पास जाता। वहां उसके लिए जलपान रखे हुए रेणुका उसकी बाट जोहती रहती। प्रात: का नाश्ता भी वह वहीं करता। इस मात्–स्नेह से उसे तृप्ति ही न होती थी। छुट्टियों के दिन वह प्राय: दिन–भर रेणुका ही के यहां रहता। उसके साथ कभी–कभी नैना भी चली जाती। वह खासकर पशु–पक्षियों की क्रीड़ा देखने जाती थी।
अमरकान्त के कोष में स्नेह आया, तो उसकी वह कृपणता जाती रही। सुखदा उसके समीप आने लगी। उसकी विलासिता से अब उसे उतना भय न रहा। रेणुका के साथ उसे लेकर वह सैर–तमाशे के लिए भी जाने लगा। रेणुका दसवें–पांचवें उसे दस–बीस रुपये जरूर दे देतीं। उसके सप्रेम आग्रह के सामने अमरकान्त की एक न चलती। उसके लिए नए–नए सूट बने, नए–नए जूते आए, मोटर साइकिल आई, सजावट के सामान आए। पांच ही छ: महीने में वह विलासिता का द्रोही, वह सरल जीवन का उपासक, अच्छा–खास रईसजादा बन बैठा, रईसजादों के भावों और विचारों से भरा हुआ उतना ही निद्वऊद्व और स्वार्थी। उसकी जेब में दस–बीस रुपये हमेशा पड़े रहते। खुद खाता, मित्रों को खिलाता और एक की जगह दो खर्च करता। वह अधययनशीलता जाती रही। ताश और चौसर में ज्यादा आनंद आता। हां, जलसों में उसे अब और अधिक उत्साह हो गया। वहां उसे कीर्ति–लाभ का अवसर मिलता था। बोलने की शक्ति उसमें पहले भी बुरी न थी। अभ्यास से और भी परिमार्जित हो गई। दैनिक समाचार और सामयिक साहित्य से भी उसे रुचि थी, विशेषकर इसलिए कि रेणुका रोज–रोज की खबरें उससे पढ़वाकर सुनती थीं।
दैनिक समाचार–पत्रों के पढ़ने से अमरकान्त के राजनैतिक ज्ञान का विकास होने लगा। देशवासियों के साथ शासक

मंडल की कोई अनीति देखकर उसका खून खौल उठता था। जो संस्थाएं राष्ट्री य उत्थान के लिए उद्योग कर रही थीं, उनसे उसे सहानुभूति हो गई। वह अपने नगर की कंाग्रेस-कमेटी का मेम्बर बन गया और उसके कार्यक्रम में भाग लेने लगा।

एक दिन कॉलेज के कुछ छात्र देहातों की आर्थिक-दशा की जांच-पड़ताल करने निकले। सलीम और अमर भी चले। अध्यापक डॉ. शान्तिकुमार उनके नेता बनाए गए। कई गांवों की पड़ताल करने के बाद मंडली संध्याक समय लौटने लगी, तो अमर ने कहा-मैंने कभी अनुमान न किया था कि हमारे कृषकों की दशा इतनी निराशाजनक है।

सलीम बोला-तालाब के किनारे वह जो चार-पांच घर मल्लाहों के थे, उनमें तो लोहे के दो-एक बर्तन के सिवा कुछ था ही नहीं। मैं समझता था, देहातियों के पास अनाज की बखारें भरी होंगी लेकिन यहां तो किसी घर में अनाज के मटके तक न थे।

शान्तिकुमार बोले-सभी किसान इतने गरीब नहीं होते। बड़े किसानों के घर में बखारें भी होती हैं लेकिन ऐसे किसान गांव में दो-चार से ज्यादा नहीं होते।

अमरकान्त ने विरोध किया-मुझे तो इन गांवों में एक भी ऐसा किसान न मिला। और महाजन और अमले इन्हीं गरीबों को चूसते हैं मैं चाहता हूं उन लोगों को इन बेचारों पर दया भी नहीं आती शान्तिकुमार ने मुस्कराकर कहा-दया और धर्म की बहुत दिनों परीक्षा हुई और यह दोनों हल्के पड़े। अब तो न्याय-परीक्षा का युग है।

शान्तिकुमार की अवस्था कोई पैंतीस की थी। गोरे-चिट्टे, रूपवान आदमी थे। वेश-भूषा अंग्रेजी थी, और पहली नजर में अंग्रेज ही मालूम होते थे क्योंकि उनकी आंखें नीली थीं, और बाल भी भूरे थे। आक्सफोर्ड से डॉक्टर की उपाधि प्राप्त कर लाए थे। विवाह के कट्टर विरोधी, स्वतंत्रता-प्रेम के कट्टर भक्त, बहुत ही प्रसन्न मुख, सहृदय, सेवाशील व्यक्ति थे। मजाक का कोई अवसर पाकर न चूकते थे। छात्रों से मित्र भाव रखते थे। राजनैतिक आंदोलनों में खूब भाग लेते पर गुप्त रूप से। खुले मैदान में न आते। हां, सामाजिक क्षेत्र में खूब गरजते थे।

अमरकान्त ने करूण स्वर में कहा-मुझे तो उस आदमी की सूरत नहीं भूलती, जो छः महीने से बीमार पड़ा था और एक पैसे की भी दवा न ली थी। इस दशा में जमींदार ने लगान की डिगरी करा ली और जो कुछ घर में था, नीलाम करा लिया। बैल तक बिकवा लिए। ऐसे अन्यायी संसार की नियंता कोई चेतन शक्ति है, मुझे तो इसमें संदेह हो रहा है। तुमने देखा नहीं सलीम, गरीब के बदन पर चिथड़े तक न थे। उसकी वृध्दा माता कितना ठट-ठटकर रोती थीं।

सलीम की आंखों में आंसू थे। बोला-तुमने रुपये दिए, तो बुढ़िया कैसे तुम्हारे पैरों पर गिर पड़ी। मैं तो अलग मुंह फेरकर रो रहा था।

मंडली यों ही बातचीत करती चली जाती थी। अब पक्की सड़क मिल गई थी। दोनों तरफ ऊंचे वृक्षों ने मार्ग को अंधोरा कर दिया था। सड़क के दाहिने-बाएं-नीचे ऊख, अरहर आदि के खेत खड़े थे। थोड़ी-थोड़ी दूर पर दो-एक मजूर या राहगीर मिल जाते थे।

सहसा एक वृक्ष के नीचे दस-बारह स्त्री-पुरुष सशंकित भाव से दुबके हुए दिखाई दिए। सब-के-सब सामने वाले अरहर के खेत की ओर ताकते और आपस में कनफुसकियां कर रहे थे। अरहर के खेत की मेड़ पर दो गोरे सैनिक हाथ में बेंत लिए अकड़े खड़े थे। छात्र-मंडली को कौतूहल हुआ। सलीम ने एक आदमी से पूछा-क्या माजरा है, तुम लोग क्यों जमा हो-

अचानक अरहर के खेत की ओर से किसी औरत का चीत्कार सुनाई पड़ा। छात्र वर्ग अपने डंडे संभालकर खेत की तरफ लपका। परिस्थिति उनकी समझ में आ गई थी।

एक गोरे सैनिक ने आंखें निकालकर छड़ी दिखाते हुए कहा-भाग जाओ नहीं हम ठोकर मारेगा ।

इतना उसके मुंह से निकलना था कि डॉ. शान्तिकुमार ने लपककर उसके मुंह पर घूंसा मारा। सैनिक के मुंह पर घूंसा पड़ा, तिलमिला उठा पर था घूंसेबाजी में मंजा हुआ। घूंसे का जवाब जो दिया, तो डॉक्टर साहब गिर पड़े। उसी वक्त सलीम ने अपनी हाकी-स्टिक उस गोरे के सिर पर जमाई। वह चौंधिया गया, जमीन पर गिर पड़ा और जैसे मूर्छित हो गया। दूसरे सैनिक को अमर और एक दूसरे छात्र ने पीटना शुरू कर दिया था पर वह इन दोनों युवकों पर भारी था। सलीम इधर से फुर्सत पाकर उस पर लपका। एक के मुकाबले में तीन हो गए। सलीम की स्टिक ने इस सैनिक को भी जमीन पर सुला दिया। इतने में अरहर के पौधों को चीरता हुआ तीसरा गोरा आ पहुंचा। डॉक्टर शान्तिकुमार संभलकर उस पर लपके ही थे कि उसने रिवाल्वर निकलकर दाग दिया। डॉक्टर साहब जमीन पर गिर पड़े। अब मामला नाजुक था। तीनों छात्र डॉक्टर साहब को संभालने लगे। यह भय भी लगा हुआ था कि वह दूसरी गोली न

चला दे। सबके प्राण नहों में समाए हुए थे।
मजूर लोग अभी तक तो तमाशा देख रहे थे। मगर डॉक्टर साहब को गिरते देख उनके खून में भी जोश आया। भय की भांति साहस भी संक्रामक होता है। सब-के-सब अपनी लकड़ियां संभालकर गोरे पर दौड़े। गोरे ने रिवाल्वर दागी पर निशाना खाली गया। इसके पहले कि वह तीसरी गोली चलाए, उस पर डंडों की वर्षा होने लगी और एक क्षण में वह भी आहत होकर गिर पड़ा।
खैरियत यह हुई कि जख्म डॉक्टर साहब की जांघ में था। सभी छात्र 'तत्कालधर्म' जानते थे। घाव का खून बंद किया और पट्टी बांध दी।
उसी वक्त एक युवती खेत से निकली और मुंह छिपाए, लंगड़ाती, कपड़े संभालती, एक तरफ चल पड़ी। अबला लज्जावश, किसी से कुछ कहे बिना, सबकी नजरों से दूर निकल जाना चाहती थी। उसकी जिस अमूल्य वस्तु का अपहरण किया गया था, उसे कौन दिला सकता था- दुष्टों को मार डालो, इससे तुम्हारी न्याय-बुध्दि को संतोष होगा, उसकी तो जो चीज गई, वह गई। वह अपना दुख क्यों रोए- क्यों फरियाद करे- सारे संसार की सहानुभूति, उसके किस काम की है ।
सलीम एक क्षण तक युवती की ओर ताकता रहा। फिर स्टिक संभालकर उन तीनों को पीटने लगा ऐसा जान पड़ता था कि उन्मत्ता हो गया है।
डॉक्टर साहब ने पुकारा-क्या करते हो सलीम इससे क्या फायदा- यह इंसानियत के खिलाफ है कि गिरे हुओं पर हाथ उठाया जाए।
सलीम ने दम लेकर कहा-मैं एक शैतान को भी जिंदा न छोड़ूंगा। मुझे फांसी हो जाए, कोई गम नहीं। ऐसा सबक देना चाहिए कि फिर किसी बदमाश को इसकी जुर्रत न हो।
फिर मजूरों की तरफ देखकर बोला-तुम इतने आदमी खड़े ताकते रहे और तुमसे कुछ न हो सका। तुममें इतनी गैरत भी नहीं- अपनी बहू-बेटियों की आबरू की हिफाजत भी नहीं कर सकते- समझते होंगे कौन हमारी बहू-बेटी हैं। इस देश में जितनी बेटियां हैं, जितनी बहुएं हैं, सब तुम्हारी बहुएं हैं, जितनी मांएं हैं, सब तुम्हारी मांएं हैं। तुम्हारी आंखों के सामने यह अनर्थ हुआ और तुम कायरों की तरह खड़े ताकते रहे क्यों सब-के-सब जाकर मर नहीं गए।
सहसा उसे खयाल आ गया कि मैं आवेश में आकर इन गरीबों को फटकार बताने की अनाधिकार चेष्टा कर रहा हूं। वह चुप हो गया और कुछ लज्जित भी हुआ।
समीप के एक गांव से बैलगाड़ी मंगाई गई। शान्तिकुमार को लोगों ने उठाकर उस पर लेटा दिया और गाड़ी चलने को हुई कि डॉक्टर साहब ने चौंककर पूछा-और उन तीनों आदमियों को क्या यहीं छोड़ जाओगे-
सलीम ने मस्तक सिकोड़कर कहा-हम उनको लादकर ले जाने के जिम्मेदार नहीं हैं। मेरा तो जी चाहता है, उन्हें खोदकर दफन कर दूं।
आखिर डॉक्टर के बहुत समझाने के बाद सलीम राजी हुआ। तीनों गोरे भी गाड़ी पर लादे गए और गाड़ी चली। सब-के-सब मजूर अपराधियों की भांति सिर झुकाए कुछ दूर तक गाड़ी के पीछे-पीछे चले। डॉक्टर ने उनको बहुत धन्यवाद देकर विदा किया। नौ बजते-बजते समीप का रेलवे स्टेशन मिला। इन लोगों ने गोरों को तो वहीं पुलिस के चार्ज में छोड़ दिया और आप डॉक्टर साहब के साथ गाड़ी पर बैठकर घर चले।
सलीम और अमर तो जरा देर में हंसने-बोलने लगे। इस संग्राम की चर्चा करते उनकी जबान न थकती थी। स्टेशन-मास्टर से कहा, गाड़ी में मुसाफिरों से कहा, रास्ते में जो मिला उससे कहा। सलीम तो अपने साहस और शौर्य की खूब डींगें मारता था, मानो कोई किला जीत आया है और जनता को चाहिए कि उसे मुकुट पहनाए, उसकी गाड़ी खींचे, उसका जुलूस निकाले किंतु अमरकान्त चुपचाप डॉक्टर साहब के पास बैठा हुआ था। आज के अनुभव ने उसके हृदय पर ऐसी चोट लगाई थी, जो कभी न भरेगी। वह मन-ही-मन इस घटना की व्याख्या कर रहा था। इन टके के सैनिकों की इतनी हिम्मत क्यों हुई- यह गोरे सिपाही
इंगलैंड के निम्नतम श्रेणी के मनुष्य होते हैं। इनका इतना साहस कैसे हुआ- इसीलिए कि भारत पराधीन है। यह लोग जानते हैं कि यहां के लोगों पर उनका आतंक छाया हुआ है। वह जो अनर्थ चाहें, करें। कोई चूं नहीं कर सकता। यह आतंक दूर करना होगा। इस पराधीनता की जंजीर को तोड़ना होगा।
इस जंजीर को तोड़ने के लिए वह तरह-तरह के मंसूबे बंधने लगा, जिनमें यौवन का उन्माद था, लड़कपन की उग्रता थी और थी कच्ची बुध्दि की बहक।

भाग 6

डॉ. शान्तिकुमार एक महीने तक अस्पताल में रहकर अच्छे हो गए। तीनों सैनिकों पर क्या बीती, नहीं कहा जा सकता पर अच्छे होते ही पहला काम जो डॉक्टर साहब ने किया, वह तांगे पर बैठकर छावनी में जाना और उन सैनिकों की कुशल पूछना था। मालूम हुआ कि वह तीनों भी कई-कई दिन अस्पताल में रहे, फिर तबदील कर दिए गए। रेजिमेंट के कप्तान ने डॉक्टर साहब से अपने आदमियों के अपराध की क्षमा मांगी और विश्वास दिलाया कि भविष्य में सैनिकों पर ज्यादा कड़ी निगाह रखी जाएगी। डॉक्टर साहब की इस बीमारी में अमरकान्त ने तन-मन से उनकी सेवा की, केवल भोजन करने और रेणुका से मिलने के लिए घर जाता, बाकी सारा दिन और सारी रात उन्हीं की सेवा में व्यतीत करता। रेणुका भी दो-तीन बार डॉक्टर साहब को देखने गई।

इधर से फुरसत पाते ही अमरकान्त कांग्रेस के कामों में ज्यादा उत्साह से शरीक होने लगा। चंदा देने में तो बस संस्था में कोई उसकी बराबरी न कर सकता था।

एक बार एक आम जलसे में वह ऐसी उद्दंडता से बोला कि पुलिस के सुपरिंटेंडेंट ने लाला समरकान्त को बुलाकर लड़के को संभालने की चेतावनी दे डाली। लालाजी ने वहां से लौटकर खुद तो अमरकान्त से कुछ न कहा, सुखदा और रेणुका दोनों से जड़ दिया। अमरकान्त पर अब किसका शासन है, वह खुद समझते थे। इधर बेटे से वह स्नेह करने लगे थे। हर महीने पढ़ाई का खर्च देना पड़ता था, तब उसका स्कूल जाना उन्हें जहर लगता था, काम में लगाना चाहते थे और उसके काम न करने पर बिगड़ते थे। अब पढ़ाई का कुछ खर्च न देना पड़ता था। इसलिए कुछ न बोलते थे बल्कि कभी-कभी संदूक की कुंजी न मिलने या उठकर संदूक खोलने के कष्ट से बचने के लिए, बेटे से रुपये उधर ले लिया करते। अमरकान्त न मांगता, न वह देते।

सुखदा का प्रसवकाल समीप आता जाता था। उसका मुख पीला पड़ गया था। भोजन बहुत कम करती थी और हंसती-बोलती भी बहुत कम थी। वह तरह-तरह के दु:स्वप्न देखती रहती थी, इससे चित्ता और भी सशंकित रहता था। रेणुका ने जनन-संबधी कई पुस्तकें उसको मंगा दी थीं। इन्हें पढ़कर वह और भी चिंतित रहती थी। शिशु की कल्पना से चित्ता में एक गर्वमय उल्लास होता था पर इसके साथ ही हृदय में कंपन भी होता था न जाने क्या होगा?

उस दिन संध्याज समय अमरकान्त उसके पास आया, तो वह जली बैठी थी। तीक्ष्ण नेत्रों से देखकर बोली-तुम मुझे थोड़ी-सी संखिया क्यों नहीं दे देते- तुम्हारा गला भी छूट जाए, मैं भी जंजाल से मुक्त हो जाऊं।

अमर इन दिनों आदर्श पति बना हुआ था। रूप-ज्योति से चमकती हुई सुखदा आंखों को उन्मत्ता करती थी पर मातृत्व के भार से लदी हुई यह पीले मुख वाली रोगिणी उसके हृदय को ज्योति से भर देती थी। वह उसके पास बैठा हुआ उसके रूखे केशों और सूखे हाथों से खेला करता। उसे इस दशा में लाने का अपराधी वह है इसलिए इस भार को सह्य बनाने के लिए वह सुखदा का मुंह जोहता रहता था। सुखदा उससे कुछ फरमाइश करे, यही इन दिनों उसकी सबसे बड़ी कामना थी। वह एक बार स्वर्ग के तारे तोड़ लाने पर भी उतारू हो जाता। बराबर उसे अच्छी-अच्छी किताबें सुनाकर उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न करता रहता था। शिशु की कल्पना से उसे जितना आनंद होता था उससे कहीं अधिक सुखदा के विषय में चिंता थी-न जाने क्या होगा- घबराकर भारी स्वर में बोला-ऐसा क्यों कहती हो सुखदा, मुझसे गलती हुई हो तो, बता दो?

सुखदा लेटी हुई थी। तकिए के सहारे टेक लगाकर बोली-तुम आम जलसों में कड़ी-कड़ी स्पीचें देते फिरते हो, इसका इसके सिवा और क्या मतलब है कि तुम पकड़े जाओ और अपने साथ घर को भी ले डूबो। दादा से पुलिस के किसी बड़े अफसर ने कहा है। तुम उनकी कुछ मदद तो करते नहीं, उल्टे और उनके किए-कराए को धूल में मिलाने को तुले बैठे हो। मैं तो आप ही अपनी जान से मर रही हूं, उस पर तुम्हारी यह चाल और भी मारे डालती है। महीने भर डॉक्टर साहब के पीछे हलकान हुए। उधर से छुट्टी मिली तो यह पचड़ा ले बैठे। क्या तुमसे शांतिपूर्वक नहीं बैठा जाता- तुम अपने मालिक नहीं हो, कि जिस राह चाहो, जाओ। तुम्हारे पांव में बेड़ियां हैं। क्या अब भी तुम्हारी आंखें नहीं खुलतीं-

अमरकान्त ने अपनी सफाई दी-मैंने तो कोई ऐसी स्पीच नहीं दी जो कड़ी कही जा सके।

'तो दादा झूठ कहते थे?'

'इसका तो यह अर्थ है कि मैं अपना मुंह सी लूं?'

'हां, तुम्हें अपना मुंह सीना पड़ेगा।'

दोनों एक क्षण भूमि और आकाश की ओर ताकते रहे। तब अमरकान्त ने परास्त होकर कहा-अच्छी बात है। आज से अपना मुंह सी लूंगा। फिर तुम्हारे सामने ऐसी शिकायत आए, तो मेरे कान पकड़ना।

सुखदा नरम होकर बोली–तुम नाराज होकर यह प्रण नहीं कर रहे हो– मैं तुम्हारी अप्रसन्नता से थर–थर कांपती हूं। मैं भी जानती हूं कि हम लोग पराधीन हैं। पराधीनता मुझे भी उतनी ही अखरती है जितनी तुम्हें। हमारे पांवों में तो दोहरी बेड़ियां हैं–समाज की अलग, सरकार की अलग लेकिन आगे–पीछे भी तो देखना होता है। देश के साथ हमारा जो धर्म है, वह और प्रबल रूप में पिता के साथ है, और उससे भी प्रबल रूप में अपनी संतान के साथ। पिता को दुखी और संतान को निस्सहाय छोड़कर देश धर्म का पालन ऐसा ही है जैसे कोई अपने घर में आग लगाकर खुले आकाश में रहे। जिस शिशु को मैं अपना हृदय–रक्त पिला–पिलाकर पाल रही हूं, उसे मैं चाहती हूं, तुम भी अपना सर्वस्व समझो। तुम्हारे सारे स्नेह और निष्ठा का मैं एकमात्र उसी को अधिकारी देखना चाहती हूं।

अमरकान्त सिर झुकाए यह उपदेश सुनता रहा। उसकी आत्मा लज्जित थी और उसे धिक्कार रही थी। उसने सुखदा और शिशु दोनों ही के साथ अन्याय किया है। शिशु का कल्पना–चित्र उसी आंखों में खींच गया। वह नवनीत–सा कोमल शिशु उसकी गोद में खेल रहा था। उसकी संपूर्ण चेतना इसी कल्पना में मग्न हो गई। दीवार पर शिशु कृष्ण का एक सुंदर चित्र लटक रहा था। उस चित्र में आज उसे जितना मार्मिक आनंद हुआ, उतना और कभी न हुआ था। उसकी आंखें सजल हो गईं।

सुखदा ने उसे एक पान का बीड़ा देते हुए कहा–अम्मां कहती हैं, बच्चे को लेकर मैं लखनऊ चली जाऊंगी। मैंने कहा–अम्मां, तुम्हें बुरा लगे या भला, मैं अपना बालक न दूंगी।

अमरकान्त ने उत्सुक होकर पूछा–तो बिगड़ी होंगी–

'नहीं जी, बिगड़ने की क्या बात थी– हां, उन्हें कुछ बुरा जरूर लगा होगा लेकिन मैं दिल्लगी में भी अपने सर्वस्व को नहीं छोड़ सकती।'

'दादा ने पुलिस कर्मचारी की बात अम्मां से भी कही होगी?'

'हां, मैं जानती हूं कही है। जाओ, आज अम्मां तुम्हारी कैसी खबर लेती हैं।'

'मैं आज जाऊंगा ही नहीं।'

'चलो, मैं तुम्हारी वकालत कर दूंगी।'

'मुआफ कीजिए। वहां मुझे और भी लज्जित करोगी।'

'नहीं सच कहती हूं। अच्छा बताओ, बालक किसको पड़ेगा, मुझे या तुम्हें। मैं कहती हूं तुम्हें पड़ेगा।'

'मैं चाहता हूं तुम्हें पड़े।'

'यह क्यों– मैं तो चाहती हूं तुम्हें पड़े।'

'तुम्हें पड़ेगा, तो मैं उसे और ज्यादा चाहूंगा।'

'अच्छा, उस स्त्री की कुछ खबर मिली जिसे गोरों ने सताया था?'

'नहीं, फिर तो कोई खबर न मिली।'

'एक दिन जाकर सब कोई उसका पता क्यों नहीं लगाते, या स्पीच देकर ही अपनेर् कर्तव्यद से मुक्त हो गए?'

अमरकान्त ने झेंपते हुए कहा–कल जाऊंगा।

'ऐसी होशियारी से पता लगाओ कि किसी को कानों–कान खबर न हो अगर घर वालों ने उसका बहिष्कार कर दिया हो, तो उसे लाओ। अम्मां को उसे अपने साथ रखने में कोई आपत्ति न होगी, और यदि होगी तो मैं अपने पास रख लूंगी।'

अमरकान्त ने श्रध्दा–पूर्ण नेत्रों से सुखदा को देखा। इसके हृदय में कितनी दया, कितना सेवा–भाव, कितनी निर्भीकता है। इसका आज उसे पहली बार ज्ञान हुआ।

उसने पूछा–तुम्हें उससे जरा भी घृणा न होगी?

सुखदा ने सकुचाते हुए कहा–अगर मैं कहूं, न होगी, तो असत्य होगा। होगी अवश्य पर संस्कारों को मिटाना होगा। उसने कोई अपराध नहीं किया, फिर सजा क्यों दी जाए–

अमरकान्त ने देखा, सुखदा निर्मल नारीत्व की ज्योति में नहा उठी है। उसका देवीत्व जैसे प्रस्फुटित होकर उससे आलिंगन कर रहा है।

भाग 7

अमरकान्त ने आम जलसों में बोलना तो दूर रहा, शरीक होना भी छोड़ दिया पर उसकी आत्मा इस बंधन से छटपटाती रहती थी और वह कभी-कभी सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में अपने मनोविकारों को प्रकट करके संतोष लाभ करता था। अब वह कभी-कभी दूकान पर भी आ बैठता। विशेषकर छुट्टियों के दिन तो वह अधिकतर दूकान पर रहता था। उसे अनुभव हो रहा था कि मानवी प्रकृति का बहुत-कुछ ज्ञान दूकान पर बैठकर प्राप्त किया जा सकता है। सुखदा और रेणुका दोनों के स्नेह और प्रेम ने उसे जकड़ लिया था। हृदय की जलन जो पहले घर वालों से, और उसके फलस्वरूप, समाज से विद्रोह करने में अपने को सार्थक समझती थी, अब शांत हो गई थी। रोता हुआ बालक मिठाई पाकर रोना भूल गया।

एक दिन अमरकान्त दूकान पर बैठा था कि एक असामी ने आकर पूछा-भैया कहां हैं बाबूजी, बड़ा जरूरी काम था-

अमर ने देखा-अधोड़, बलिष्ठ, काला, कठोर आकृति का मनुष्य है। नाम है काले खां। रूखाई से बोला-वह कहीं गए हुए हैं। क्या काम है-

'बड़ा जरूरी काम था। कुछ कह नहीं गए, कब तक आएंगे?'

अमर को शराब की ऐसी दुर्गंध आई कि उसने नाक बंद कर ली और मुंह फेरकर बोला-क्या तुम शराब पीते हो-

काले खां ने हंसकर कहा-शराब किसे मयस्सर होती है लाला, रूखी रोटियां तो मिलती नहीं- आज एक नातेदारी में गया था, उन लोगों ने पिला दी।

वह और समीप आ गया और अमर के कान के पास मुंह लगाकर बोला-एक रकम दिखाने लाया था। कोई दस तोले की होगी। बाजार में ढाई सौ से कम नहीं है लेकिन मैं तुम्हारा पुराना असामी हूं। जो कुछ दे दोगे, ले लूंगा।

उसने कमर से एक जोड़ा सोने के कड़े निकाले और अमर के सामने रख दिए। अमर ने कड़ें को बिना उठाए हुए पूछा-यह कड़े तुमने कहां पाए-

काले खां ने बेहयाई से मुस्कराकर कहा-यह न पूछो राजा, अल्लाह देने वाला है।

अमरकान्त ने घृणा का भाव दिखाकर कहा-कहीं से चुरा लाए होगे-

काले खां फिर हंसा-चोरी किसे कहते हैं राजा, यह तो अपनी खेती है। अल्लाह ने सबके पीछे हीला लगा दिया है। कोई नौकरी करके लाता है, कोई मजूरी करता है, कोई रोजगार करता है, देता सबको वही खुदा है। तो फिर निकलो रुपये, मुझे देर हो रही है। इन लाल पगड़ी वालों की बड़ी खातिर करनी पड़ती है भैया, नहीं एक दिन काम न चले।

अमरकान्त को यह व्यापार इतना जघन्य जान पड़ा कि जी में आया काले खां को दुत्कार दे। लाला समरकान्त ऐसे समाज के शत्रुओं से व्यवहार रखते हैं, यह खयाल करके उसके रोएं खड़े हो गए। उसे उस दूकान से, उस मकान से, उस वातावरण से, यहां तक कि स्वयं अपने आपसे घृणा होने लगी। बोला-मुझे इस चीज की जरूरत नहीं है। इसे ले जाओ, नहीं मैं पुलिस में इत्तिला कर दूंगा। फिर इस दूकान पर ऐसी चीज लेकर न आना, कहे देता हूं।

काले खां जरा भी विचलित न हुआ, बोला-यह तो तुम बिलकुल नई बात कहते हो भैया लाला इस नीति पर चलते, तो आज महाजन न होते। हजारों रुपये की चीज तो मैं ही दे गया हूंगा। अंगनू, महाजन, भिखारी, हींगन, सभी से लाला का व्यवहार है। कोई चीज हाथ लगी और आंख बंद करके यहां चले आए, दाम लिया और घर की राह ली। इसी दूकान से बाल-बच्चों का पेट चलता है। कांटा निकलकर तौल लो। दस तोले से कुछ ऊपर ही निकलेगा मगर यहां पुरानी जजमानी है, लाओ डेढ़ सौ ही दो, अब कहां दौड़ते फिरें-

अमर ने दृढ़ता से कहा-मैंने कह दिया मुझे इसकी जरूरत नहीं।

'पछताओगे लाला, खड़े-खड़े ढ़ाई सौ में बेच लोगे।'

'क्यों सिर खा रहे हो, मैं इसे नहीं लेना चाहता?'

'अच्छा लाओ, सौ ही रुपये दे दो। अल्लाह जानता है, बहुत बल खाना पड़ रहा है पर एक बार घाटा ही सही।'

'तुम व्यर्थ मुझे दिख रहे हो। मैं चोरी का माल नहीं लूंगा, चाहे लाख की चीज धोले में मिले। तुम्हें चोरी करते शर्म भी नहीं आती ईश्वर ने हाथ-पांव दिए हैं, खासे मोटे-ताजे आदमी हो, मजदूरी क्यों नहीं करते- दूसरों का माल उड़ाकर अपनी दुनिया और आकबत दोनों खराब कर रहे हो।'

काले खां ने ऐसा मुंह बनाया, मानो ऐसी बकवास बहुत सुन चुका है और बोला-तो तुम्हें नहीं लेना है-

'नहीं।'

'पचास देते हो?'

'एक कौड़ी नहीं।'

काले खां ने कड़े उठाकर कमर में रख लिए और दूकान के नीचे उतर गया। पर एक क्षण में फिर लौटकर बोला–अच्छा तीस रुपये ही दे दो। अल्लाह जानता है, पगड़ी वाले आधा ले लेंगे।
अमरकान्त ने उसे धक्का देकर कहा–निकल जा यहां से सूअर, मुझे क्यों हैरान कर रहा है–
काले खां चला गया, तो अमर ने उस जगह को झाड़ू से साफ कराया और अगरबत्ती जलाकर रख दी। उसे अभी तक शराब की दुर्गंध आ रही थी। आज उसे अपने पिता से जितनी अभक्ति हुई, उतनी कभी न हुई थी। उस घर की वायु तक उसे दूषित लगने लगी। पिता के हथकंडों से वह कुछ–कुछ परिचित तो था पर उनका इतना पतन हो गया है, इसका प्रमाण आज ही मिला। उसने मन में निश्चय किया आज पिता से इस विषय में खूब अच्छी तरह शास्त्रार्थ करेगा। उसने खड़े होकर अधीर नेत्रों से सड़क की ओर देखा। लालाजी का पता न था। उसके मन में आया, दूकान बंद करके चला जाए और जब पिताजी आ जाए तो साफ–साफ कह दे, मुझसे यह व्यापार न होगा। वह दूकान बंद करने ही जा रहा था कि एक बुढ़िया लाठी टेकती हुई आकर सामने खड़ी हो गई और बोली–लाला नहीं हैं क्या, बेटा –
बुढ़िया के बाल सन हो गए थे। देह की हड्डियां तक सूख गई थीं। जीवन–यात्रा के उस स्थान पर पहुंच गई थी, जहां से उसका आकार मात्र दिखाई देता था, मानो दो–एक क्षण में वह अदृश्य हो जाएगी।
अमरकान्त के जी में पहले तो आया कि कह दे, लाला नहीं हैं, वह आएं तब आना लेकिन बुढ़िया के पिचके हुए मुख पर ऐसी करूण याचना, ऐसी शून्य निराशा छाई हुई थी कि उसे उस पर दया आ गई। बोला–लालाजी से क्या काम है– वह तो कहीं गए हुए हैं।
बुढ़िया ने निराश होकर कहा–तो कोई हरज नहीं बेटा, मैं फिर आ जाऊंगी।
अमरकान्त ने नम्रता से कहा–अब आते ही होंगे, माता। ऊपर चली जाओ।
दूकान की कुरसी ऊंची थी। तीन सीढ़ियां चढ़नी पड़ती थीं। बुढ़िया ने पहली पट्टी पर पांव रखा पर दूसरा पांव ऊपर न उठा सकी। पैरों में इतनी शक्ति न थी। अमर ने नीचे आकर उसका हाथ पकड़ लिया और उसे सहारा देकर दूकान पर चढ़ा दिया। बुढ़िया ने आशीर्वाद देते हुए कहा–तुम्हारी बड़ी उम्र हो बेटा, मैं यही डरती हूं कि लाला देर में आएं और अंधोरा हो गया, तो मैं घर कैसे पहुंचूंगी– रात को कुछ नहीं सूझता बेटा।
'तुम्हारा घर कहां है माता ?'
बुढ़िया ने ज्योतिहीन आंखों से उसके मुख की ओर देखकर कहा–गोवर्धन की सराय पर रहती हूं, बेटा ।
'तुम्हारे और कोई नहीं है?'
'सब हैं भैया, बेटे हैं, पोते हैं, बहुएं हैं, पोतों की बहुएं हैं पर जब अपना कोई नहीं, तो किस काम का– नहीं लेते मेरी सुध, न सही। हैं तो अपने। मर जाऊंगी, तो मिट्टी तो ठिकाने लगा देंगे।'
'तो वह लोग तुम्हें कुछ देते नहीं?'
बुढ़िया ने स्नेह मिले हुए गर्व से कहा–मैं किसी के आसरे–भरोसे नहीं हूं बेटा जीते रहें मेरा लाला समरकान्त, वह मेरी परवरिश करते हैं। तब तो तुम बहुत छोटे थे भैया, जब मेरा सरदार लाला का चपरासी था। इसी कमाई में खुदा ने कुछ ऐसी बरक्कत दी कि घर–द्वार बना, बाल–बच्चों का ब्याह–गौना हुआ, चार पैसे हाथ में हुए। थे तो पांच रुपये के प्यादे, पर कभी किसी से दबे नहीं, किसी के सामने गर्दन नहीं झुकाई। जहां लाला का पसीना गिरे, वहां अपना खून बहाने को तैयार रहते थे। आधी रात, पिछली रात, जब बुलाया, हाजिर हो गए। थे तो अदना–से नौकर, मुदा लाला ने कभी 'तुम' कहकर नहीं पुकारा। बराबर खां साहब कहते थे। बड़े–बड़े सेठिए कहते–खां साहब, हम इससे दूनी तलब देंगे, हमारे पास आ जाओ पर सबको यही जवाब देते कि जिसके हो गए उसके हो गए। जब तक वह दुत्कार न देगा, उसका दामन न छोडेगें। लाला ने भी ऐसा निभाया कि क्या कोई निभाएगा– उन्हें मरे आज बीसवां साल है, वही तलब मुझे देते जाते हैं। लड़के पराए हो गए, पोते बात नहीं पूछते पर अल्लाह मेरे लाला को सलामत रखे, मुझे किसी के सामने हाथ फैलाने की नौबत नहीं आई।
अमरकान्त ने अपने पिता को स्वार्थी, लोभी, भावहीन समझ रखा था। आज उसे मालूम हुआ, उनमें दया और वात्सल्य भी है। गर्व से उसका हृदय पुलकित हो उठा। बोला–तो तुम्हें पांच रुपये मिलते हैं–
'हां बेटा, पांच रुपये महीना देते जाते हैं।'
'तो मैं तुम्हें रुपये दिए देता हूं, लेती जाओ। लाला शायद देर में आएं।'
वृध्दा ने कानों पर हाथ रखकर कहा–नहीं बेटा, उन्हें आ जाने दो। लठिया टेकती चली जाऊंगी। अब तो यही आंख रह गई है।

'इसमें हर्ज क्या है- मैं उनसे कह दूंगा, पठानिन रुपये ले गई। अंधोरे में कहीं गिर-गिरा पड़ोगी।'
'नहीं बेटा, ऐसा काम नहीं करती, जिसमें पीछे से कोई बात पैदा हो। फिर आ जाऊंगी।'
नहीं, मैं बिना लिए न जाने दूंगा।'
बुढ़िया ने डरते-डरते कहा-तो लाओ दे दो बेटा, मेरा नाम टांक लेना पठानिन।
अमरकान्त ने रुपये दे दिए। बुढ़िया ने कांपते हाथों से रुपये लेकर गिरह बांधो और दुआएं देती हुई, धीरे-धीरे सीढ़ियों से नीचे उतरी मगर पचास कदम भी न गई होगी कि पीछे से अमरकान्त एक इक्का लिए हुए आया और बोला-बूढ़ी माता, आकर इक्के पर बैठ जाओ, मैं तुम्हें पहुंचा दूं।
बुढ़िया ने आश्चर्यचकित नेत्रों से देखकर कहा-अरे नहीं, बेटा तुम मुझे पहुंचाने कहां जाओगे मैं लठिया टेकती हुई चली जाऊंगी। अल्लाह तुम्हें सलामत रखे।
अमरकान्त इक्का ला चुका था। उसने बुढ़िया को गोद में उठाया और इक्के पर बैठाकर पूछा-कहां चलूं-
बुढ़िया ने इक्के के डंडों को मजबूती से पकड़कर कहा-गोवर्धन की सराय चलो बेटा, अल्लाह तुम्हारी उम्र दराज करे। मेरा बच्चा इस बुढ़िया के लिए इतना हैरान हो रहा है। इत्तीम दूर से दौड़ा आया। पढ़ने जाते हो न बेटा, अल्लाह तुम्हें बड़ा दरजा दे।
पंद्रह-बीस मिनट में इक्का गोवर्धन की सराय पहुंच गया। सड़क के दाहिने हाथ एक गली थी। वहीं बुढ़िया ने इक्का रूकवा दिया, और उतर पड़ी। इक्का आगे न जा सकता था। मालूम पड़ता था, अंधोरे ने मुंह पर तारकोल पोत लिया है। अमरकान्त ने इक्के को लौटाने के लिए कहा, तो बुढ़िया बोली-नहीं मेरे लाल, इत्ती। दूर आए हो, तो पल-भर मेरे घर भी बैठ लो, तुमने मेरा कलेजा ठंडा कर दिया।
गली में बड़ी दुर्गंध थी। गंदे पानी के नाले दोनों तरफ बह रहे थे। घर प्राय: सभी कच्चे थे। गरीबों का मुहल्ला था। शहरों के बाजारों और गलियों में कितना अंतर है एक फूल है-सुंदर, स्वच्छ, सुगंधमय दूसरी जड़ है-कीचड़ और दुर्गन्ध से भरी, टेढ़ी-मेढ़ी लेकिन क्या फूल को मालूम है कि उसकी हस्ती जड़ से है-
बुढ़िया ने एक मकान के सामने खड़े होकर धीरे से पुकारा-सकीना अंदर से आवाज आई-आती हूं अम्मां इतनी देर कहां लगाई-
एक क्षण में सामने का द्वार खुला और एक बालिका हाथ में मिट्टी के तेल की कुप्पी लिए द्वार पर खड़ी हो गई। अमरकान्त बुढ़िया के पीछे खड़ा था, उस पर बालिका की निगाह न पड़ी लेकिन बुढ़िया आगे बढ़ी, तो सकीना ने अमर को देखा। तुरंत ओढ़नी में मुंह छिपाती हुई पीछे हट गई और धीरे से पूछा-यह कौन हैं, अम्मां?
बुढ़िया ने कोने में अपनी लकड़ी रख दी और बोली-लाला का लड़का है, मुझे पहुंचाने आया है। ऐसा नेक-शरीफ लड़का तो मैंने देखा ही नहीं।
उसने अब तक का सारा वृत्तांत अपने आशीर्वादों से भरी भाषा में कह सुनाया और बोली-आंगन में खाट डाल दे बेटी, जरा बुला लूं। थक गया होगा।
सकीना ने एक टूटी-सी खाट आंगन में डाल दी और उस पर एक सड़ी-सी चादर बिछाती हुई बोली-इस खटोले पर क्या बिठाओगी अम्मां, मुझे तो शर्म आती है-
बुढ़िया ने जरा कड़ी आंखों से देखकर कहा-शर्म की क्या बात है इसमें- हमारा हाल क्या इनसे छिपा है-
उसने बाहर जाकर अमरकान्त को बुलाया। द्वार एक परदे की दीवार में था। उस पर एक टाट का गटा-पुराना परदा पड़ा हुआ था। द्वार के अंदर कदम रखते ही एक आंगन था, जिसमें मुश्किल से दो खटोले पड़ सकते थे। सामने खपरैल का एक नीचा सायबान था और सायबान के पीछे एक कोठरी थी, जो इस वक्त अंधोरी पड़ी हुई थी। सायबान में एक किनारे चूल्हा बना हुआ था और टीन और मिट्टी के दो-चार बर्तन, एक घड़ा और एक मटका रखे हुए थे। चूल्हे में आग जल रही थी और तवा रखा हुआ था।
अमर ने खाट पर बैठते हुए कहा-यह घर तो बहुत छोटा है। इसमें गुजर कैसे होती है-
बुढ़िया खाट के पास जमीन पर बैठ गई और बोली-बेटा, अब तो दो ही आदमी हैं, नहीं, इसी घर में एक पूरा कुनबा रहता था। मेरे दो बेटे, दो बहुएं, उनके बच्चे, सब इसी घर में रहते थे। इसी में सबों के शादी-ब्याह हुए और इसी में सब मर भी गए। उस वक्त यह ऐसा गुलजार लगता था कि तुमसे क्या कहूं- अब मैं हूं और मेरी यह पोती है। और सबको अल्लाह ने बुला लिया। पकाते हैं और पड़े रहते हैं। तुम्हारे पठान के मरते ही घर में जैसे झाड़ू फिर गई। अब तो अल्लाह से यही दुआ है कि मेरे जीते-जी यह किसी भले आदमी के पाले पड़ जाए, तब अल्लाह से कहूंगी कि अब मुझे

उठा लो। तुम्हारे यार-दोस्त तो बहुत होंगे बेटा, अगर शर्म की बात न समझो, तो किसी से जिक्र करना। कौन जाने तुम्हारे ही हीले से कहीं बातचीत ठीक हो जाए।

सकीना कुरता-पाजामा पहने, ओढ़नी से माथा छिपाए सायबान में खड़ी थी। बुढ़िया ने ज्योंही उसकी शादी की चर्चा छेड़ी, वह चूल्हे के पास जा बैठी और आटे को अंगुलियों से गोदने लगी। वह दिल में झुंझला रही थी कि अम्मां क्यों इनसे मेरा दुखड़ा ले बैठी- किससे कौन बात कहनी चाहिए, कौन बात नहीं, इसका इन्हें जरा भी लिहाज नहीं- जो ऐरा-गैरा आ गया, उसी से शादी का पचड़ा गाने लगीं। और सब बातें गईं, बस एक शादी रह गई।

उसे क्या मालूम कि अपनी संतान को विवाहित देखना बुढ़ापे की सबसे बड़ी अभिलाषा है।

अमरकान्त ने मन में मुसलमान मित्रों का सिंहावलोकन करते हुए कहा-मेरे मुसलमान दोस्त ज्यादा तो नहीं हैं लेकिन जो दो-एक हैं, उनसे मैं जिक्र करूंगा।

वृध्दा ने चिंतित भाव से कहा-वह लोग धनी होंगे-

'हां, सभी खुशहाल हैं।'

'तो भला धनी लोग गरीबों की बात क्यों पूछेंगे- हालांकि हमारे नबी का हुक्म है कि शादी-ब्याह में अमीर-गरीब का विचार न होना चाहिए, पर उनके हुक्म को कौन मानता है नाम के मुसलमान, नाम के हिन्दू रह गए हैं। न कहीं सच्चा मुसलमान नजर आता है, न सच्चा हिन्दू। मेरे घर का तो तुम पानी भी न पियोगे बेटा, तुम्हारी क्या खातिर करूं (सकीना से) बेटी, तुमने जो रूमाल काढ़ा है वह लाकर भैया को दिखाओ। शायद इन्हें पसंद आ जाए। और हमें अल्लाह ने किस लायक बनाया है-

सकीना रसोई से निकली और एक ताक पर से सिगरेट का एक बड़ा-सा बक्स उठा लाई और उसमें से वह रूमाल निकालकर सिर झुकाए, झिझकती हुई, बुढ़िया के पास आ, रूमाल रख, तेजी से चली गई।

अमरकान्त आंखें झुकाए हुए था पर सकीना को सामने देखकर आंखें नीची न रह सकीं। एक रमणी सामने खड़ी हो, तो उसकी ओर से मुंह फेर लेना कितनी भली बात है। सकीना का रंग सांवला था और रूप-रेखा देखते हुए वह सुंदरी न कही जा सकती थी अंग-प्रत्यंग का गठन भी कवि-वर्णित उपमाओं से मेल न खाता था पर रंग-रूप, चाल-ढाल, शील-संकोच, इन सबने मिल-जुलकर उसे आकर्षक शोभा प्रदान कर दी थी। वह बड़ी-बड़ी पलकों से आंखें छिपाए, देह चुराए, शोभा की सुगंध और ज्योति फैलाती हुई इस तरह निकल गई, जैसे स्वप्न-चित्र एक झलक दिखाकर मिट गया हो।

अमरकान्त ने रूमाल उठा लिया और दीपक के प्रकाश में उसे देखने लगा। कितनी सफाई से बेल-बूटे बनाए गए थे। बीच में एक मोर का चित्र था। इस झोंपडे। में इतनी सुरुचि-

चकित होकर बोला-यह तो खूबसूरत रूमाल है, माताजी सकीना काढ़ने के काम में बहुत होशियार मालूम होती है।

बुढ़िया ने गर्व से कहा-यह सभी काम जानती है भैया, न जाने कैसे सीख लिया- मुहल्ले की दो-चार लड़कियां मदरसे पढ़ने जाती हैं। उन्हीं को काढ़ते देखकर इसने सब कुछ सीख लिया। कोई मर्द घर में होता, तो हमें कुछ काम मिल जाएा करता। गरीबों के मुहल्ले में इन कामों की कौन कदर कर सकता है- तुम यह रूमाल लेते जाओ बेटा, एक बेकस की नजर है।

अमर ने रूमाल को जेब में रखा तो उसकी आंखें भर आईं। उसका बस होता तो इसी वक्त सौ-दो सौ रूमालों की फरमाइश कर देता। फिर भी यह बात उसके दिल में जम गई। उसने खड़े होकर कहा-मैं इस रूमाल को हमेशा तुम्हारी दुआ समझूंगा। वादा तो नहीं करता लेकिन मुझे यकीन है कि मैं अपने दोस्तों से आपको कुछ काम दिला सकूंगा।

अमरकान्त ने पहले पठानिन के लिए 'तुम' का प्रयोग किया था। चलते समय तक वह तुम आप में बदल गया था। सुरुचि, सुविचार, सद्भाव उसे यहां सब कुछ मिला। हां, उस पर विपन्नता का आवरण पड़ा हुआ था। शायद सकीना ने यह 'आप' और 'तुम' का विवेक उत्पन्न कर दिया था।

अमर उठ खड़ा हुआ। बुढ़िया आंचल फैलाकर उसे दुआएं देती रही।

भाग 8

अमरकान्त नौ बजते-बजते लौटा तो लाला समरकान्त ने पूछा-तुम दूकान बंद करके कहां चले गए थे- इसी तरह दूकान पर बैठा जाता है-

अमर ने सफाई दी–बुढ़िया पठानिन रुपये लेने आई थी। बहुत अंधोरा हो गया था। मैंने समझा कहीं गिर–गिरा पड़े इसलिए उसे घर तक पहुंचाने चला गया था। वह तो रुपये लेती ही न थी पर जब बहुत देर हो गई तो मैंने रोकना उचित न समझा।
'कितने रुपये दिए?'
'पांच।'
लालाजी को कुछ धैर्य हुआ।
'और कोई असामी आया था– किसी से कुछ रुपये वसूल हुए?'
'जी नहीं।'
'आश्चर्य है।'
'और तो कोई नहीं आया, हां, वही बदमाश काले खां सोने की एक चीज बेचने लाया था। मैंने लौटा दिया।'
समरकान्त की त्योरियां बदलीं–क्या चीज थी–
'सोने के कड़े थे। दस तोले बताता था।'
'तुमने तौला नहीं?'
'मैंने हाथ से छुआ तक नहीं।'
'हां, क्यों छूते, उसमें पाप लिपटा हुआ था न कितना मांगता था?'
'दो सौ।'
'झूठ बोलते हो।'
'शुरू दो सौ से किए थे, पर उतरते–उतरते तीस रुपये तक आया था।'
लालाजी की मुद्रा कठोर हो गई–फिर भी तुमने लौटा दिए–
'और क्या करता– मैं तो उसे सेंत में भी न लेता। ऐसा रोजगार करना मैं पाप समझता हूं।'
समरकान्त क्रोध से विकृत होकर बोले–चुप रहो, शरमाते तो नहीं, ऊपर से बातें बनाते हो। डेढ़ सौ रुपये बैठे–बैठाए मिलते थे, वह तुमने धर्म के घमंड में खो दिए, उस पर से अकड़ते हो। जानते भी हो, धर्म है क्या चीज– साल में एक बार भी गंगा–स्नान करते हो– एक बार भी देवताओं को जल चढ़ाते हो– कभी राम का नाम लिया है जिंदगी में– कभी एकादशी या कोई दूसरा व्रत रखा है– कभी कथा–पुराण पढ़ते या सुनते हो– तुम क्या जानो धर्म किसे कहते हैं– धर्म और चीज है, रोजगार और चीज। छि: साफ डेढ़ सौ फेंक दिए।
अमरकान्त धर्म की इस व्याख्या पर मन–ही–मन हंसकर बोला–आप गंगा–स्नान, पूजा–पाठ को मुख्य धर्म समझते हैं मैं सच्चाई, सेवा और परोपकार को मुख्य धर्म समझता हूं। स्नान–धयान, पूजा–व्रत धर्म के साधन मात्र हैं, धर्म नहीं।
समरकान्त ने मुंह चिढ़ाकर कहा–ठीक कहते हो, बहुत ठीक अब संसार तुम्हीं को धर्म का आचार्य मानेगा। अगर तुम्हारे धर्म–मार्ग पर चलता, तो आज मैं भी लंगोटी लगाए घूमता होता, तुम भी यों महल में बैठकर मौज न करते होते। चार अक्षर अंग्रेजी पढ़ ली न, यह उसी की विभूति है लेकिन मैं ऐसे लोगों को भी जानता हूं, जो अंग्रेजी के विद्वान् होकर अपना धर्म–कर्म निभाए जाते हैं। साफ डेढ़ सौ पानी में डाल दिए।
अमरकान्त ने अधीर होकर कहा–आप बार–बार, उसकी चर्चा क्यों करते हैं– मैं चोरी और डाके के माल का रोजगार न करूंगा, चाहे आप खुश हों या नाराज। मुझे ऐसे रोजगार से घृणा होती है।
'तो मेरे काम में वैसी आत्मा की जरूरत नहीं। मैं ऐसी आत्मा चाहता हूं, जो अवसर देखकर, हानि–लाभ का विचार करके काम करे।'
'धर्म को मैं हानि–लाभ की तराजू पर नहीं तौल सकता।'
इस वज्र–मूर्खता की दवा, चांटे के सिवा और कुछ न थी। लालाजी खून का घूंट पीकर रह गए। अमर हृष्ट –पुष्ट न होता, तो आज उसे धर्म की निंदा करने का मजा मिल जाता। बोले-बस, तुम्हीं तो संसार में एक धर्म के ठेकेदार रह गए हो, और सब तो अधर्मी हैं। वही माल जो तुमने अपने घमंड में लौटा दिया, तुम्हारे किसी दूसरे भाई ने दो–चार रुपये कम–बेश देकर ले लिया होगा। उसने तो रुपये कमाए, तुम नींबू–नोन चाटकर रह गए। डेढ़–सौ रुपये तब मिलते हैं, जब डेढ़ सौ थान कपड़ा या डेढ़ सौ बोरे चीनी बिक जाए। मुंह का कौर नहीं है। अभी कमाना नहीं पड़ा है, दूसरों की कमाई से चैन उड़ा रहे हो, तभी ऐसी बातें सूझती हैं। जब अपने सिर पड़ेगी, तब आंखें खुलेंगी।
अमर अब भी कायल न हुआ। बोला–मैं कभी यह रोजगार न करूंगा।

लालाजी को लड़के की मूर्खता पर क्रोध की जगह क्रोध-मिश्रित दया आ गई। बोले-तो फिर कौन रोजगार करोगे- कौन रोजगार है, जिसमें तुम्हारी आत्मा की हत्या न हो, लेन-देन, सूद-बक्रा, अनाज-कपड़ा, तेल-घी, सभी रोजगारों में दांव-घात है। जो दांव-घात समझता है, वह नगा उठाता है, जो नहीं समझता, उसका दिवाला पिट जाता है। मुझे कोई ऐसा रोजगार बता दो, जिसमें झूठ न बोलना पड़े, बेईमानी न करनी पड़े। इतने बड़े-बड़े हाकिम हैं, बताओ कौन घूस नहीं लेता- एक सीधी-सी नकल लेने जाओ, तो एक रुपया लग जाता है। बिना तहरीर लिए थानेदार रपट तक नहीं लिखता। कौन वकील है, जो झूठे गवाह नहीं बनाता- लीडरों ही में कौन है, जो चंदे के रुपये में नोच-खसोट न करता हो- माया पर तो संसार की रचना हुई है, इससे कोई कैसे बच सकता है-

अमर ने उदासीन भाव से सिर हिलाकर कहा-अगर रोजगार का यह हाल है, तो मैं रोजगार करूंगा ही नहीं।

'तो घर-गिरस्ती कैसे चलेगी- कुएं में पानी की आमद न हो, तो कै दिन पानी निकले?'

अमरकान्त ने इस विवाद का अंत करने के इरादे से कहा-मैं भूखों मर जाऊंगा, पर आत्मा का गला न घोंटूंगा।

'तो क्या मजूरी करोगे?'

'मजूरी करने में कोई शर्म नहीं है।'

समरकान्त ने हथौड़े से काम चलते न देखकर घन चलाया-शर्म चाहे न हो पर तुम कर न सकोगे, कहो लिख दूं- मुंह से बक देना सरल है, कर दिखाना कठिन होता है। चोटी का पसीना एड़ी तक आता है, तब चार गंडे पैसे मिलते हैं। मजूरी करेंगे एक घड़ा पानी तो अपने हाथों खींचा नहीं जाता, चार पैसे की भाजी लेनी होती है, तो नौकर लेकर चलते हैं, यह मजूरी करेंगे। अपने भाग्य को सराहो कि मैंने कमाकर रख दिया है। तुम्हारा किया कुछ न होगा। तुम्हारी इन बातों से ऐसा जी जलता है कि सारी जायदाद कृष्णार्पण कर दूं फिर देखूं तुम्हारी आत्मा किधर जाती है-

अमरकान्त पर उनकी इस चोट का भी कोई असर न हुआ-आप खुशी से अपनी जायदाद कृष्णार्पण कर दें। मेरे लिए रत्तीह भर भी चिंता न करें। जिस दिन आप यह पुनीत कार्य करेंगे, उस दिन मेरा सौभाग्य-सूर्य उदय होगा। मैं इस मोह से मुक्त होकर स्वाधीन हो जाऊंगा। जब तक मैं इस बंधन में पड़ा रहूंगा, मेरी आत्मा का विकास होगा।

समरकान्त के पास अब कोई शस्त्र न था। एक क्षण के लिए क्रोध ने उनकी व्यवहार-बुध्दि को भ्रष्ट कर दिया। बोले-तो क्यों इस बंधन में पड़े हो- क्यों अपनी आत्मा का विकास नहीं करते- महात्मा ही हो जाओ। कुछ करके दिखाओ तो जिस चीज की तुम कदर नहीं कर सकते, वह मैं तुम्हारे गले नहीं मढ़ना चाहता।

यह कहते हुए वह ठाकुरद्वारे में चले गए, जहां इस समय आरती का घंटा बज रहा था। अमर इस चुनौती का जवाब न दे सका। वे शब्द जो बाहर न निकल सके, उसके हृदय में फोड़े क़ी तरह टीसने लगे-मुझ पर अपनी संपत्ति की धौंस जमाने चले हैं- चोरी का माल बेचकर, जुआरियों को चार आने रुपये ब्याज पर रुपये देकर, गरीब मजूरों और किसानों को ठगकर तो रुपये जोड़े हैं, उस पर आपको इतना अभिमान है ईश्वर न करे कि मैं उस धन का गुलाम बनूं।

वह इन्हीं उत्तेधजना से भरे हुए विचारों में डूबा बैठा था कि नैना ने आकर कहा-दादा बिगड़ रहे थे, भैयाजी।

अमरकान्त के एकांत जीवन में नैना ही स्नेह और सांत्वना की वस्तु थी। अपना सुख-दुख अपनी विजय और पराजय, अपने मंसूबे और इरादे वह उसी से कहा करता था। यद्यपि सुखदा से अब उसे उतना विराग न था, अब उससे प्रेम भी हो गया था पर नैना अब भी उसमें निकटतर थी। सुखदा और नैना दोनों उसके अंतस्थल के दो कूल थे। सुखदा ऊंची, दुर्गम और विशाल थी। लहरें उसके चरणों ही तक पहुंचकर रह जाती थीं। नैना समतल, सुलभ और समीप। वायु का थोड़ा वेग पाकर भी लहरें उसके मर्मस्थल तक पहुँचती थीं।

अमर अपनी मनोव्यथा मंद मुस्कान की आड़ में छिपाता हुआ बोला-कोई नई बात नहीं थी नैना। वही पुराना पचड़ा था। तुम्हारी भाभी तो नीचे नहीं थीं-

'अभी तक तो यहीं थीं। जरा देर हुई ऊपर चली गईं।'

'तो आज उधर से भी शस्त्र-प्रहार होंगे। दादा ने तो आज मुझसे साफ कह दिया, तुम अपने लिए कोई राह निकालो, और मैं भी सोचता हूं, मुझे अब कुछ-न-कुछ करना चाहिए। यह रोज-रोज की फटकार नहीं सही जाती। मैं कोई बुराई करूं, तो वह मुझे दस जूते भी जमा दें, चूं न करूंगा लेकिन अधर्म पर मुझसे न चला जाएगा।'

नैना ने इस वक्त मीठी पकौड़ियां, नमकीन पकौड़ियां और न जाने क्या-क्या पका रखे थे। उसका मन उन पदार्थों को खिलाने और खाने के आनंद में बसा हुआ था। यह धर्म-अधर्म के झगड़े उसे व्यर्थ-से जान पड़े। बोली-पहले चलकर पकौड़ियां खा लो, फिर इस विषय पर सलाह होगी।

अमर ने वित्तष्णा के भाव से कहा-ब्यालू करने की मेरी इच्छा नहीं है। लात की मारी रोटियां कंठ के नीचे न उतरेंगी।

दादा ने आज फैसला कर दिया ।
'अब तुम्हारी यही बात मुझे अच्छी नहीं लगती। आज की–सी मजेदार पकौड़ियां तुमने कभी न खाई होंगी। तुम न खाओगे, तो मैं न खाऊंगी।'
नैना की इस दलील ने उसके इंकार को कई कदम पीछे धकेल दिया–तू मुझे बहुत दिख करती है नैना, सच कहता हूं, मुझे बिलकुल इच्छा नहीं है।
'चलकर थाल पर बैठो तो, पकौड़ियां देखते ही टूट न पड़ो, तो कहना।'
'तू जाकर खा क्यों नहीं लेती– मैं एक दिन न खाने से मर तो न जाऊंगा।'
'तो क्या मैं एक दिन न खाने से मर जाऊंगी– मैं निर्जला शिवरात्रि रखती हूं, तुमने तो कभी व्रत नहीं रखा।'
नैना के आग्रह को टालने की शक्ति अमरकान्त में न थी।
लाला समरकान्त रात को भोजन न करते थे। इसलिए भाई, भावज, बहन साथ ही खा लिया करते थे। अमर आंगन में पहुंचा, तो नैना ने भाभी को बुलाया। सुखदा ने ऊपर ही से कहा–मुझे भूख नहीं है।
मनावन का भार अमरकान्त के सिर पड़ा। वह दबे पांव ऊपर गया। जी में डर रहा था कि आज मुआमला तूल खींचेगा पर इसके साथ ही दृढ़ भी था। इस प्रश्न पर दबेगा नहीं। यह ऐसा मार्मिक विषय था, जिस पर किसी प्रकार का समझौता हो ही न सकता था।
अमरकान्त की आहट पाते ही सुखदा संभल बैठी। उसके पीले मुख पर ऐसी करूण वेदना झलक रही थी कि एक क्षण के लिए अमरकान्त चंचल हो गया।
अमरकान्त ने उसका हाथ पकड़कर कहा–चलो, भोजन कर लो। आज बहुत देर हो गई।
'भोजन पीछे करूंगी, पहले मुझे तुमसे एक बात का फैसला करना है। तुम आज फिर दादाजी से लड़ पड़े?'
'दादाजी से मैं लड़ पड़ा, या उन्हीं ने मुझे अकारण डांटना शुरू किया?'
सुखदा ने दार्शनिक निरपेक्षता के स्वर में कहा–तो उन्हें डांटने का अवसर ही क्यों देते हो– मैं मानती हूं कि उनकी नीति तुम्हें अच्छी नहीं लगती। मैं भी उसका समर्थन नहीं करती लेकिन अब इस उम्र में तुम उन्हें नए रास्ते पर नहीं चला सकते। वह भी तो उसी रास्ते पर चल रहे हैं, जिस पर सारी दुनिया चल रही है। तुमसे जो कुछ हो सके, उनकी मदद करो जब वह न रहेंगे उस वक्त अपने आदर्शों का पालन करना। तब कोई तुम्हारा हाथ न पकड़ेगा। इस वक्त तुम्हें अपने सिध्दांतों के विरूद्व' भी कोई बात करनी पड़े, तो बुरा न मानना चाहिए। उन्हें कम–से–कम इतना संतोष तो दिला दो कि उनके पीछे तुम उनकी कमाई लुटा न दोगे। मैं आज तुम दोनों की बातें सुन रही थी। मुझे तो तुम्हारी ही ज्यादती मालूम होती थी।
अमरकान्त उसके प्रसव–भार पर चिंता–भार न लादना चाहता था पर प्रसंग ऐसा आ पड़ा था कि वह अपने को निर्दोष ही करना आवश्यक समझता था। बोला–उन्होंने मुझसे साफ–साफ कह दिया, तम अपनी फिक्र करो। उन्हें अपना धन मुझसे ज्यादा प्यारा है।
यही कांटा था, जो अमरकान्त के हृदय में चुभ रहा था।
सुखदा के पास जवाब तैयार था–तुम्हें भी तो अपना सिध्दांत अपने बाप से ज्यादा प्यारा है– उन्हें तो मैं कुछ नहीं कहती। अब साठ बरस की उम्र में उन्हें उपदेश नहीं दिया जा सकता। कम–से–कम तुमको यह अधिकार नहीं है। तुम्हें धन काटता हो लेकिन मनस्वी, वीर पुरुषों ने सदैव लक्ष्मी की उपासना की है। संसार को पुरुषार्थियों ने ही भोगा है और हमेशा भोगेंगे। त्याग गृहस्थों के लिए नहीं है, संन्यासियों के लिए है। अगर तुम्हें त्यागव्रत लेना था तो विवाह करने की जरूरत न थी, सिर मुड़ाकर किसी साधु–संत के चेले बन जाते। फिर मैं तुमसे झगड़ने न आती। अब ओखली में सिर डाल कर तुम मूसलों से नहीं बच सकते। गृहस्थी के चरखे में पड़कर बड़े–बड़ों की नीति भी स्खलित हो जाती है। कृष्ण और अर्जुन तक को एक नए तर्क की शरण लेनी पड़ी।
अमरकान्त ने इस ज्ञानोपदेश का जवाब देने की जरूरत न समझी। ऐसी दलीलों पर गंभीर विचार किया ही नहीं जा सकता था। बोला–तो तुम्हारी सलाह है कि संन्यासी हो जाऊं–
सुखदा चिढ़ गई। अपनी दलीलों का यह अनादर न सह सकी। बोली–कायरों को इसके सिवाय और सूझ ही क्या सकता है– धन कमाना आसान नहीं है। व्यवसायियों को जितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, वह अगर संन्यासियों को झेलनी पड़ें, तो सारा संन्यास भूल जाए। किसी भले आदमी के द्वार पर जाकर पड़े रहने के लिए बल, बुध्दि विद्या, साहस किसी की भी जरूरत नहीं। धनोपार्जन के लिए खून जलाना पड़ता है मांस सुखाना पड़ता है।

सहज काम नहीं है। धन कहीं पड़ा नहीं है कि जो चाहे बटोर लाए।
अमरकान्त ने उसी विनोदी भाव से कहा–मैं तो दादा को गद्दी पर बैठे रहने के सिवाय और कुछ करते नहीं देखता। और भी जो बड़े–बड़े सेठ–साहूकार हैं उन्हें भी फूलकर कुप्पा होते ही देखा है। रक्त और मांस तो मजदूर ही जलाते हैं। जिसे देखो कंकाल बना हुआ है।
सुखदा ने कुछ जवाब न दिया। ऐसी मोटी अक्ल के आदमी से ज्यादा बकवास करना व्यर्थ था।
नैना ने पुकारा–तुम क्या करने लगे, भैया आते क्यों नहीं– पकौड़ियां ठंडी हुई जाती हैं।
सुखदा ने कहा–तुम जाकर खा क्यों नहीं लेते– बेचारी ने दिन–भर तैयारियां की हैं।
'मैं तो तभी जाऊंगा, जब तुम भी चलोगी।'
'वादा करो कि फिर दादाजी से लड़ाई न करोगे।'
अमरकान्त ने गंभीर होकर कहा–सुखदा, मैं तुमसे सत्य कहता हूं, मैंने इस लड़ाई से बचने के लिए कोई बात उठा नहीं रखी। इन दो सालों में मुझमें कितना परिवर्तन हो गया है, कभी–कभी मुझे इस पर स्वयं आश्चर्य होता है। मुझे जिन बातों से घृणा थी, वह सब मैंने अंगीकार कर लीं लेकिन अब उस सीमा पर आ गया हूं कि जौ भर भी आगे बढ़ा, तो ऐसे गर्त में जा गिरूंगा, जिसकी थाह नहीं है। उस सर्वनाश की ओर मुझे मत ढकेलो।

सुखदा को इस कथन में अपने ऊपर लांछन का आभास हुआ। इसे वह कैसे स्वीकार करती– बोली–इसका तो यही आशय है कि मैं तुम्हारा सर्वनाश करना चाहती हूं। अगर अब तक मेरे व्यवहार का यही तत्व तुमने निकाला है, तो तुम्हें इससे बहुत पहले मुझे विष दे देना चाहिए था। अगर तुम समझते हो कि मैं भोग–विलास की दासी हूं और केवल स्वार्थवश तुम्हें समझाती हूं तो तुम मेरे साथ घोरतम अन्याय कर रहे हो। मैं तुमको बता देना चाहती हूं, कि विलासिनी सुखदा अवसर पड़ने पर जितने कष्ट झेलने की सामर्थ्य रखती है, उसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। ईश्वर वह दिन न लाए कि मैं तुम्हारे पतन का साधन बनूं। हां, जलने के लिए स्वयं चिता बनाना मुझे स्वीकार नहीं। मैं जानती हूं कि तुम थोड़ी बुध्दि से काम लेकर अपने सिध्दांत और धर्म की रक्षा भी कर सकते हो और घर की तबाही को भी रोक सकते हो। दादाजी पढ़े–लिखे आदमी हैं, दुनिया देख चुके हैं। अगर तुम्हारे जीवन में कुछ सत्य है, तो उसका उन पर प्रभाव पड़े बगैर नहीं रह सकता। आए दिन की झौड़ से तुम उन्हें और भी कठोर बनाए देते हो। बच्चे भी मार से जिद्दी हो जाते हैं। बूढ़ों की प्रकृति कुछ बच्चों की–सी होती है। बच्चों की भांति उन्हें भी तुम सेवा और भक्ति से ही अपना सकते हो।

अमर ने पूछा–चोरी का माल खरीदा करूं–
'कभी नहीं।'
'लड़ाई तो इसी बात पर हुई।'
'तुम उस आदमी से कह सकते थे–दादा आ जाएं तब लाना।'
'और अगर वह न मानता– उसे तत्काल रुपये की जरूरत थी।'
'आप'र्म भी तो कोई चीज है?'
'वह पाखंडियों का पाखंड है।'
'तो मैं तुम्हारे निर्जीव आदर्शवाद को भी पाखंडियों का पाखंड समझती हूं।'
एक मिनट तक दोनों थके हुए योद्धाओं की भांति दम लेते रहे। तब अमरकान्त ने कहा–नैना पुकार रही है।
'मैं तो तभी चलूंगी, जब तुम वह वादा करोगे।'
अमरकान्त ने अविचल भाव से कहा–तुम्हारी खातिर से कहो वादा कर लूं पर मैं उसे पूरा नहीं कर सकता। यही हो सकता है कि मैं घर की किसी बात से सरोकार न रखूं।
सुखदा निश्चयात्मक रूप से बोली–यह इससे कहीं अच्छा है कि रोज घर में लड़ाई होती रहे। जब तक इस घर में हो, इस घर की हानि–लाभ का तुम्हें विचार करना पड़ेगा।
अमर ने अकड़कर कहा–मैं आज इस घर को छोड़ सकता हूं।
सुखदा ने बम–सा फेंका–और मैं–
अमर विस्मय से सुखदा का मुंह देखने लगा।

सुखदा ने उसी स्वर में कहा–इस घर से मेरा नाता तुम्हारे आधार पर है जब तुम इस घर में न रहोगे, तो मेरे लिए यहां क्या रखा है– जहां तुम रहोगे, वहीं मैं भी रहूंगी।
अमर ने संशयात्मक स्वर में कहा–तुम अपनी माता के साथ रह सकती हो।
'माता के साथ क्यों रहूं– मैं किसी की आश्रित नहीं रह सकती। मेरा दु:ख–सुख तुम्हारे साथ है। जिस तरह रखोगे, उसी तरह रहूंगी। मैं भी देखूंगी, तुम अपने सिध्दांतों के कितने पक्के हो– मैं प्रण करती हूं कि तुमसे कुछ न मांगूंगी। तुम्हें मेरे कारण जरा भी कष्ट न उठाना पड़ेगा। मैं खुद भी कुछ पैदा कर सकती हूं, थोड़ा मिलेगा, थोड़े में गुजर कर लेंगे, बहुत मिलेगा तो पूछना ही क्या। जब एक दिन हमें अपनी झोंपड़ी बनानी ही है तो क्यों न अभी से हाथ लगा दें। तुम कुएं से पानी लाना, मैं चौका–बर्तन कर लूंगी। जो आदमी एक महल में रहता है, वह एक कोठरी में भी रह सकता है। फिर कोई धौंस तो न जमा सकेगा।
अमरकान्त पराभूत हो गया। उसे अपने विषय में तो कोई चिंता नहीं लेकिन सुखदा के साथ वह यह अत्याचार कैसे कर सकता था–
खिसियाकर बोला–वह समय अभी नहीं आया है, सुखदा ।
'क्यों झूठ बोलते हो तुम्हारे मन में यही भाव है और इससे बड़ा अन्याय तुम मेरे साथ नहीं कर सकते कष्ट सहने में, या सिध्दांत की रक्षा के लिए स्त्रियां कभी पुरुषों से पीछे नहीं रहीं। तुम मुझे मजबूर कर रहे हो कि और कुछ नहीं तो लांछन से बचने के लिए मैं दादाजी से अलग रहने की आज्ञा मांगू। बोलो?'
अमर लज्जित होकर बोला–मुझे क्षमा करो सुखदा मैं वादा करता हूं कि दादाजी जैसा कहेंगे, वैसा ही करूंगा।
'इसलिए कि तुम्हें मेरे विषय में संदेह है?'
'नहीं, केवल इसलिए कि मुझमें अभी उतना बल नहीं है।'
इसी समय नैना आकर दोनों को पकौड़ियां खिलाने के लिए घसीट ले गई। सुखदा प्रसन्न थी। उसने आज बहुत बड़ी विजय पाई थी। अमरकान्त झेंपा हुआ था। उसके आदर्श और धर्म की आज परीक्षा हो गई थी और उसे अपनी दुर्बलता का ज्ञान हो गया था। ऊंट पहाड़ के नीचे आकर अपनी ऊंचाई देख चुका था।

भाग 9

जीवन में कुछ सार है, अमरकान्त को इसका अनुभव हो रहा है। वह एक शब्द भी मुंह से ऐसा नहीं निकालना चाहता, जिससे सुखदा को दुख हो क्योंकि वह गर्भवती है। उसकी इच्छा के विरूद्वद्व' वह छोटी–से–छोटी बात भी नहीं कहना चाहता। वह गर्भवती है। उसे अच्छी–अच्छी किताबें पढ़कर सुनाई जाती हैं रामायण, महाभारत और गीता से अब अमर को विशेष प्रेम है क्योंकि सुखदा गर्भवती है। बालक के संस्कारों का सदैव धयान बना रहता है। सुखदा को प्रसन्न रखने की निरंतर चेष्टा की जाती है। उसे थिएटर, सिनेमा दिखाने में अब अमर को संकोच नहीं होता। कभी फूलों के गजरे आते हैं, कभी कोई मनोरंजन की वस्तु। सुबह–शाम वह दूकान पर भी बैठता है। सभाओं की ओर उसकी रुचि नहीं है। वह पुत्र का पिता बनने जा रहा है। इसकी कल्पना से उसमें ऐसा उत्साह भर जाता है कि कभी–कभी एकांत में नतमस्तक होकर कृष्ण के चित्र के सामने सिर झुका लेता है। सुखदा तप कर रही है। अमर अपने को नई जिम्मेदारियों के लिए तैयार कर रहा है। अब तक वह समतल भूमि पर था, बहुत संभलकर चलने की उतनी जरूरत न थी। अब वह ऊंचाई पर जा पहुंचा है। वहां बहुत संभलकर पांव रखना पड़ता है।
लाला समरकान्त भी आजकल बहुत खुश नजर आते हैं। बीसों ही बार अंदर आकर सुखदा से पूछते हैं, किसी चीज की जरूरत तो नहीं है– अमर पर उनकी विशेष कृपा–दृष्टि हो गई है। उसके आदर्शवाद को वह उतना बुरा नहीं समझते। एक दिन काले खां को उन्होंने दूकान से खड़े–खड़े निकाल दिया। असामियों पर वह उतना नहीं बिगड़ते, उतनी मालिशें नहीं करते। उनका भविष्य उज्ज्वल हो गया है। एक दिन उनकी रेणुका से बातें हो रही थीं। अमरकान्त की निष्ठा की उन्होंने दिल खोलकर प्रशंसा की।
रेणुका उतनी प्रसन्न न थीं। प्रसव के कष्टों को याद करके वह भयभीत हो जाती थीं। बोलीं–लालाजी, मैं तो भगवान् से यही मनाती हूं कि जब हंसाया है, तो बीच में रूलाना मत। पहलौंठी में बड़ा संकट रहता है। स्त्री का दूसरा जन्म होता है।
समरकान्त को ऐसी कोई शंका न थी। बोले–मैंने तो बालक का नाम सोच लिया है। उसका नाम होगा–रेणुकान्त।
रेणुका आशंकित होकर बोली–अभी नाम–वाम न रखिए, लालाजी इस संकट से उबर हो जाए, तो नाम सोच लिया

जाएगा। मैं सोचती हूं, दुर्गा–पाठ बैठा दीजिए। इस मुहल्ले में एक दाई रहती है, उसे अभी से रख लिया जाए, तो अच्छा हो। बिटिया अभी बहुत–सी बातें नहीं समझती। दाई उसे संभालती रहेगी।
लालाजी ने इस प्रस्ताव को हर्ष से स्वीकार कर लिया। यहां से जब वह घर लौटे तो देखा–दूकान पर दो गोरे और एक मेम बैठे हुए हैं और अमरकान्त उनसे बातें कर रहा है। कभी–कभी नीचे दर्जे के गोरे यहां अपनी घड़ियां या और कोई चीज बेचने के लिए आ जाते थे। लालाजी उन्हें खूब ठगते थे। वह जानते थे कि ये लोग बदनामी के भय से किसी दूसरी दुकान पर न जाएंगे। उन्होंने जाते–ही–जाते अमरकान्त को हटा दिया और खुद सौदा पटाने लगे। अमरकान्त स्पष्टवादी था और यह स्पष्टवादिता का अवसर न था। मेम साहब को सलाम करके पूछा–कहिए मेम साहब, क्या हुक्म है–
तीनों शराब के नशे में चूर थे। मेम साहब ने सोने की एक जंजीर निकालकर कहा –सेठजी, हम इसको बेचना चाहता है। बाबा बहुत बीमार है। उसका दवाई में बहुत खर्च हो गया।
समरकान्त ने जंजीर लेकर देखा और हाथ में तौलते हुए बोले–इसका सोना तो अच्छा नहीं है, मेम साहब आपने कहां बनवाया था–
मेम हंसकर बोली–ओ तुम बराबर यही बात कहता है। सोना बहुत अच्छा है। अंग्रेजी दूकान का बना हुआ है। आप इसको ले लें।
समरकान्त ने अनिच्छा का भाव दिखाते हुए कहा–बड़ी–बड़ी दूकानें ही तो ग्राहकों को उलटे छुरे से मूंड़ती हैं। जो कपड़ा यहां बाजार में छह आने गज मिलेगा, वही अंग्रेजी दूकानों पर बारह आने गज से नीचे न मिलेगा। मैं तो दस रुपये तोले से बेशी नहीं दे सकता।
'और कुछ नहीं देगा?'
'कुछ और नहीं। यह भी आपकी खातिर है।'

यह गोरे उस श्रेणी के थे, जो अपनी आत्मा को शराब और जुए के हाथों बेच देते हैं, बे–टिकट गर्स्ट क्लास में सफर करते हैं, होटल वालों को धोखा देकर उड़ जाते हैं और जब कुछ बस नहीं चलता, तो बिगड़े हुए शरीफ बनकर भीख मांगते हैं। तीनों ने आपस में सलाह की और जंजीर बेच डाली। रुपये लेकर दूकान से उतरे और तांगे पर बैठे ही थे कि एक भिखारिन तांगे के पास आकर खड़ी हो गई। वे तीनों रुपये पाने की खुशी में भूले हुए थे कि सहसा उस भिखारिन ने छुरी निकालकर एक गोरे पर वार किया। छुरी उसके मुंह पर आ रही थी। उसने घबराकर मुंह पीछे हटाया तो छाती में चुभ गई। वह तो तांगे पर ही हाय–हाय करने लगा। शेष दोनों गोरे तांगे से उतर पड़े और दूकान पर आकर प्राणरक्षा मांफना चाहते थे कि भिखारिन ने दूसरे गोरे पर वार कर दिया। छुरी उसकी पसली में पहुंच गई। दूकान पर चढ़ने न पाया था, धड़ाम से गिर पड़ा। भिखारिन लपककर दूकान पर चढ़ गई और मेम पर झपटी कि अमरकान्त हां–हां करके उसकी छुरी छीन लेने को बढ़ा। भिखारिन ने उसे देखकर छुरी फेंक दी और दूकान के नीचे कूदकर खड़ी हो गई। सारे बाजार में हलचल मच गई–एक गोरे ने कई आदमियों को मार डाला है, लाला समरकान्त मार डाले गए, अमरकान्त को भी चोट आई है। ऐसी दशा में किसे अपनी जान भारी थी, जो वहां आता। लोग दूकानें बंद करके भागने लगे।

दोनों गोरे जमीन पर पड़े तड़प रहे थे, ऊपर मेम सहमी हुई खड़ी थी और लाला समरकान्त अमरकान्त का हाथ पकड़कर अंदर घसीट ले जाने की चेष्टा कर रहे थे। भिखारिन भी सिर झुकाए जड़वत् खड़ी थी–ऐसी भोली–भाली जैसे कुछ किया नहीं है ।
वह भाग सकती थी, कोई उसका पीछा करने का साहस न करता पर भागी नहीं। वह आत्मघात कर सकती थी। उसकी छुरी अब भी जमीन पर पड़ी हुई थी पर उसने आत्मघात भी न किया। वह तो इस तरह खड़ी थी, मानो उसे यह सारा दृश्य देखकर विस्मय हो रहा हो।
सामने के कई दूकानदार जमा हो गए। पुलिस के दो जवान भी आ पहुँचे। चारों तरफ से आवाज आने लगी–यही औरत है यही औरत है पुलिस वालों ने उसे पकड़ लिया।
दस मिनट में सारा शहर और सारे अधिकारी वहां आकर जमा हो गए। सब तरफ लाल पगड़ियां दीख पड़ती थीं। सिविल सर्जन ने आकर आहतों को उठवाया और अस्पताल ले चले। इधर तहकीकात होने लगी। भिखारिन ने अपना

अपराध स्वीकार किया।
पुलिस सुपरिंटेंडेंट ने पूछा–तेरी इन आदमियों से कोई अदावत थी–
भिखारिन ने कोई जवाब न दिया।
सैकड़ों आवाजें आईं–बोलती क्यों नहीं हत्यारिन ।
भिखारिन ने दृढ़ता से कहा–मैं हत्यारिन नहीं हूं।
'इन साहबों को तूने नहीं मारा?'
'हां, मैंने मारा है।'
'तो तू हत्यारिन कैसे नहीं है?'
'मैं हत्यारिन नहीं हूं। आज से छः महीने पहले ऐसे ही तीन आदमियों ने मेरी आबरू बिगाड़ी थी। मैं फिर घर नहीं गई। किसी को अपना मुंह नहीं दिखाया। मुझे होश नहीं कि मैं कहां–कहां फिरी, कैसे रही, क्या–क्या किया– इस वक्त भी मुझे होश तब आया, जब मैं इन दोनों गोरों को घायल कर चुकी थी। तब मुझे मालूम हुआ कि मैंने क्या किया– मैं बहुत गरीब हूं। मैं नहीं कह सकती, मुझे छुरी किसने दी, कहां से मिली और मुझमें इतनी हिम्मत कहां से आई– मैं यह इसलिए नहीं कह रही हूं कि मैं फांसी से डरती हूं। मैं तो भगवान् से मनाती हूं कि जितनी जल्द हो सके, मुझे संसार से उठा लो। जब आबरू लुट गई, तो जीकर क्या करूंगी?'
इस कथन ने जनता की मनोवृत्ति बदल दी। पुलिस ने जिन–जिन लोगों के बयान लिए, सबने यही कहा–यह पगली है। इधर–उधर मारी–मारी फिरती थी। खाने को दिया जाता था, तो कुत्तोंल के आगे डाल देती थी। पैसे दिए जाते थे, तो फेंक देती थी।
एक तांगे वाले ने कहा–यह बीच सड़क पर बैठी हुई थी। कितनी ही घंटी बजाई, पर रास्ते से हटी नहीं। मजबूर होकर पटरी से तांगा निकाल लाया।
एक पान वाले ने कहा–एक दिन मेरी दूकान पर आकर खड़ी हो गई। मैंने एक बीड़ा दिया। उसे जमीन पर डालकर पैरों से कुचलने लगी, फिर गाती हुई चली गई।
अमरकान्त का बयान भी हुआ। लालाजी तो चाहते थे कि वह इस झंझट में न पड़े पर अमरकान्त ऐसा उत्तोजित हो रहा था कि उन्हें दुबारा कुछ कहने का हौसला न हुआ। अमर ने सारा वृत्तांित कह सुनाया। रंग को चोखा करने के लिए दो–चार बातें अपनी तरफ से जोड़ दीं।
पुलिस के अफसर ने पूछा–तुम कह सकते हो, यह औरत पागल है–
अमरकान्त बोला–जी हां, बिलकुल पागल। बीसियों ही बार उसे अकेले हंसते या रोते देखा है। कोई कुछ पूछता, तो भाग जाती थी।
यह सब झूठ था। उस दिन के बाद आज यह औरत यहां पहली बार उसे नजर आई थी। संभव है उसने कभी, इधर–उधर भी देखा हो पर वह उसे पहचान न सका था।
जब पुलिस पगली को लेकर चली तो दो हजार आदमी थाने तक उसके साथ गए। अब वह जनता की दृष्टि में साधारण स्त्री न थी। देवी के पद पर पहुंच गई थी। किसी दैवी शक्ति के बगैर उसमें इतना साहस कहां से आ जाता रात–भर शहर के अन्य भागों में आ–आकर लोग घटना–स्थल का मुआयना करते रहे। दो–एक आदमी उस कांड की व्याख्या करने में हार्दिक आनंद प्राप्त कर रहे थे। यों आकर तांगे के पास खड़ी हो गई, यों छुरी निकाली, यों झपटी, यों दोनों दूकान पर चढ़े, यों दूसरे गोरे पर टूटी। भैया अमरकान्त सामने न जाएं, तो मेम का काम भी तमाम कर देती। उस समय उसकी आंखों से लाल अंगारे निकल रहे थे। मुख पर ऐसा तेज था, मानो दीपक हो।
अमरकान्त अंदर गया तो देखा, नैना भावज का हाथ पकड़े सहमी खड़ी है और सुखदा राजसी करूणा से आंदोलित सजल नेत्र चारपाई पर बैठी हुई है। अमर को देखते ही वह खड़ी हो गई और बोली–यह वही औरत थी न–
'हां, वही तो मालूम होती है।'
'तो अब यह फांसी पा जाएगी?'
'शायद बच जाए, पर आशा कम है।'
'अगर इसको फांसी हो गई तो मैं समझूंगी, संसार से न्याय उठ गया। उसने कोई अपराध नहीं किया। जिन दुष्टों ने उस पर ऐसा अत्याचार किया, उन्हें यही दंड मिलना चाहिए था। मैं अगर न्याय के पद पर होती, तो उसे बेदाग छोड़ देती। ऐसी देवी की तो प्रतिमा बनाकर पूजना चाहिए। उसने अपनी सारी बहनों का मुख उज्ज्वल कर दिया।'

अमरकान्त ने कहा–लेकिन यह तो कोई न्याय नहीं कि काम कोई करे सजा कोई पाए।
सुखदा ने उग्र भाव से कहा–वे सब एक हैं। जिस जाति में ऐसे दुष्ट हों उस जाति का पतन हो गया है। समाज में एक आदमी कोई बुराई करता है, तो सारा समाज बदनाम हो जाता है और उसका दंड सारे समाज को मिलना चाहिए। एक गोरी औरत को सरहद का कोई आदमी उठा ले गया था। सरकार ने उसका बदला लेने के लिए सरहद पर चढ़ाई करने की तैयारी कर दी थी। अपराधी कौन है, इसे पूछा भी नहीं। उसकी निगाह में सारा सूबा अपराधी था। इस भिखारिन का कोई रक्षक न था। उसने अपनी आबरू का बदला खुद लिया। तुम जाकर वकीलों से सलाह लो, फांसी न होने पाए चाहे कितने ही रुपये खर्च हो जाएं। मैं तो कहती हूं, वकीलों को इस मुकदमे की पैरवी मुर्ति करनी चाहिए। ऐसे मुआमले में भी कोई वकील मेहनताना मांगे, तो मैं समझूंगी वह मनुष्य नहीं। तुम अपनी सभा में आज जलसा करके चंदा लेना शुरू कर दो। मैं इस दशा में भी इसी शहर से हजारों रुपये जमा कर सकती हूं। ऐसी कौन नारी है, जो उसके लिए नाहीं कर दे।
अमरकान्त ने उसे शांत करने के इरादे से कहा–जो कुछ तुम चाहती हो वह सब होगा। नतीजा कुछ भी हो पर हम अपनी तरफ से कोई बात उठा न रखेंगे। मैं जरा प्रो शान्तिकुमार के पास जाता हूं। तुम जाकर आराम से लेटो।
'मैं भी अम्मां के पास जाऊंगी। तुम मुझे उधर छोड़कर चले जाना।'
अमर ने आग्रहपूर्वक कहा–तुम चलकर शांति से लेटो, मैं अम्मां से मिलता चला जाऊंगा।
सुखदा ने चिढ़कर कहा–ऐसी दशा में जो शांति से लेटे वह मृतक है। इस देवी के लिए तो मुझे प्राण भी देने पड़ें, तो खुशी से दूं। अम्मां से मैं जो कहूंगी, वह तुम नहीं कह सकते। नारी के लिए नारी के हृदय में जो तड़प होगी, वह पुरुषों के हृदय में नहीं हो सकती। मैं अम्मां से इस मुकदमे के लिए पांच हजार से कम न लूंगी। मुझे उनका धन न चाहिए। चंदा मिले तो वाह–वाह, नहीं तो उन्हें खुद निकल आना चाहिए। तांगा बुलवा लो।
अमरकान्त को आज ज्ञात हुआ, विलासिनी के हृदय में कितनी वेदना, कितना स्वजाति–प्रेम, कितना उत्सर्ग है।
तांगा आया और दोनों रेणुकादेवी से मिलने चले।

भाग 10

तीन महीने तक सारे शहर में हलचल रही। रोज आदमी सब काम–धंधों छोड़कर कचहरी जाते। भिखारिन को एक नजर देख लेने की अभिलाषा सभी को खींच ले जाती। महिलाओं की भी खासी संख्या हो जाती थी। भिखारिन ज्योंही लारी से उतरती, 'जय–जय' की गगन–भेदी ध्वनि और पुष्प–वर्षा होने लगती। रेणुका और सुखदा तो कचहरी के उठने तक वहीं रहतीं।
जिला मैजिस्ट्रेकट ने मुकदमे को जजी में भेज दिया और रोज पेशियां होने लगीं। पंच नियुक्त हुए। इधर सफाई के वकीलों की एक फौज तैयार की गई। मुकदमे को सबूत की जरूरत न थी। अपराधिनी ने अपराध स्वीकार ही कर लिया था। बस, यही निश्चय करना था कि जिस वक्त उसने हत्या की उस वक्त होश में थी या नहीं। शहादतें कहती थीं, वह होश में न थी। डॉक्टर कहता था, उसमें अस्थिरचित्त होने के कोई चिह्न नहीं मिलते। डॉक्टर साहब बंगाली थे। जिस दिन वह बयान देकर निकले, उन्हें इतनी धिक्कारें मिलीं कि बेचारे को घर पहुंचना मुश्किल हो गया। ऐसे अवसरों पर जनता की इच्छा के विरूद्वद्व' किसी ने चूं किया और उसे घिक्कार मिली। जनता आत्म–निश्चय के लिए कोई अवसर नहीं देती। उसका शासन किसी तरह की नर्मी नहीं करता।
रेणुका नगर की रानी बनी हुई थीं। मुकदमे की पैरवी का सारा भार उनके ऊपर था। शान्तिकुमार और अमरकान्त उनकी दाहिनी और बाईं भुजाएं थे। लोग आ–आकर खुद चंदा दे जाते। यहां तक कि लाला समरकान्त भी गुप्त रूप से सहायता कर रहे थे।
एक दिन अमरकान्त ने पठानिन को कचहरी में देखा। सकीना भी चादर ओढ़े उसके साथ थी।
अमरकान्त ने पूछा–बैठने को कुछ लाऊं, माताजी– आज आपसे भी न रहा गया–
पठानिन बोली–मैं तो रोज आती हूं बेटा, तुमने मुझे न देखा होगा। यह लड़की मानती ही नहीं।
अमरकान्त को रूमाल की याद आ गई, और वह अनुरोध भी याद आया, जो बुढ़िया ने उससे किया था पर इस हलचल में वह कॉलेज तक तो जा न पाता था, उन बातों का कहां से खयाल रखता।
बुढ़िया ने पूछा–मुकदमे में क्या होगा बेटा– वह औरत छूटेगी कि सजा हो जायगी–
सकीना उसके और समीप आ गई।

अमर ने कहा–कुछ कह नहीं सकता, माता। छूटने की कोई उम्मीद नहीं मालूम होती मगर हम प्रीवी–कौंसिल तक जाएंगे।
पठानिन बोली–ऐसे मामले में भी जज सजा कर दे, तो अंधेर है।
अमरकान्त ने आवेश में कहा–उसे सजा मिले चाहे रिहाई हो, पर उसने दिखा दिया कि भारत की दरिद्र औरतें भी अपनी आबरू की कैसे रक्षा कर सकती हैं।
सकीना ने पूछा तो अमर से, पर दादी की तरफ मुंह करके–हम दर्शन कर सकेंगे अम्मां–
अमर ने तत्परता से कहा–हां, दर्शन करने में क्या है– चलो पठानिन, मैं तुम्हें अपने घर की स्त्रियों के साथ बैठा दूं। वहां तुम उन लोगों से बातें भी कर सकोगी।
पठानिन बोली–हां, बेटा, पहले ही दिन से यह लड़की मेरी जान खा रही है। तुमसे मुलाकात ही न होती थी कि पूछूं। कुछ रूमाल बनाए थे। उनसे दो रुपये मिले। वह दोनों रुपये तभी से संचित कर रखे हुए हैं। चंदा देगी। न हो तो तुम्हीं ले लो बेटा, औरतों को दो रुपये देते हुए शर्म आएगी।
अमरकान्त गरीबों का त्याग देखकर भीतर–ही–भीतर लज्जित हो गया। वह अपने को कुछ समझने लगा था। जिधर निकल जाता, जनता उसका सम्मान करती लेकिन इन फाकेमस्तोंल का यह उत्साह देखकर उसकी आंखें खुल गईं। बोला–चंदे की तो अब कोई जरूरत नहीं है, अम्मां रुपये की कमी नहीं है। तुम इसे खर्च कर डालना। हां, चलो मैं उन लोगों से तुम्हारी मुलाकात करा दूं।
सकीना का उत्साह ठंडा पड़ गया। सिर झुकाकर बोली–जहां गरीबों के रुपये नहीं पूछे जाते, वहां गरीबों को कौन पूछेगा– वहां जाकर क्या करोगी, अम्मां आएगी तो यहीं से देख लेना।
अमरकान्त झेंपता हुआ बोला–नहीं–नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है अम्मां, वहां तो एक पैसा भी हाथ फैलाकर लिया जाता है। गरीब–अमीर की कोई बात नहीं है। मैं खुद गरीब हूं। मैंने तो सिर्फ इस खयाल से कहा था कि तुम्हें तकलीफ होगी।
दोनों अमरकान्त के साथ चलीं, तो रास्ते में पठानिन ने धीरे से कहा–मैंने उस दिन तुमसे एक बात कही थी, बेटा शायद तुम भूल गए।
अमरकान्त ने शरमाते हुए कहा–नहीं–नहीं, मुझे याद है। जरा आजकल इसी झंझट में पड़ा रहा। ज्योंही इधर से फुरसत मिली, मैं अपने दोस्तों से जिक्र करूंगा।
अमरकान्त दोनों स्त्रियों का रेणुका से परिचय कराके बाहर निकला, तो प्रो शान्ति कुमार से मुठभेड़ हुई। प्रोफ़ेसर ने पूछा–तुम कहां इधर–उधर घूम रहे हो जी– किसी वकील का पता नहीं। मुकदमा पेश होने वाला है। आज मुलजिमा का बयान होगा, इन वकीलों से खुदा समझे। जरा–सा इजलास पर खड़े क्या हो जाते हैं, गोया सारे संसार को उनकी उपासना करनी चाहिए। इससे कहीं अच्छा था कि दो–एक वकीलों को मेहनताने पर रख लिया जाता। मुर्ति का काम बेगार समझा जाता है। इतनी बेदिली से पैरवी की जा रही है कि मेरा खून खौलने लगता है। नाम सब चाहते हैं, काम कोई नहीं करना चाहता।अगर अच्छी जिरह होती, तो पुलिस के सारे गवाह उखड़ जाते। पर यह कौन करता– जानते हैं कि आज मुलजिमा का बयान होगा, फिर भी किसी को फिक्र नहीं।
अमरकान्त ने कहा–मैं एक–एक को इत्तिला दे चुका । कोई न आए तो मैं क्या करूं–
शान्तिकुमार–मुकदमा खतम हो जाए, तो एक–एक की खबर लूंगा।
इतने में लारी आती दिखाई दी। अमरकान्त वकीलों को इत्ताला करने दौड़ा। दर्शक चारों ओर से दौड़–दौड़कर अदालत के कमरे में आ पहुँचे। भिखारिन लारी से उतरी और कटघरे के सामने आकर खड़ी हो गई। उसके आते ही हजारों की आंखें उसकी ओर उठ गईं पर उन आंखों में एक भी ऐसी न थी, जिसमें श्रध्दा न भरी हो। उसके पीले, मुरझाए हुए मुख पर आत्मगौरव की ऐसी कांति थी जो कुत्सित दृष्टि के उठने के पहले ही निराश और पराभूत करके उसमें श्रध्दा को आरोपित कर देती थी।
जज साहब सांवले रंग के नाटे, चकले, वृहदाकार मनुष्य थे। उनकी लंबी नाक और छोटी–छोटी आंखें अनायास ही मुस्कराती मालूम देती थीं। पहले यह महाशय राष्ट' के उत्साही सेवक थे और कांग्रेस के किसी प्रांतीय जलसे के सभापति हो चुके थे पर इधर तीन साल से वह जज हो गए थे। अतएव अब राष्ट्रीय आंदोलन से पृथक् रहते थे, पर जानने वाले जानते थे कि वह अब भी पत्रों में नाम बदलकर अपने राष्ट्रीथय विचारों का प्रतिपादन करते रहते हैं। उनके विषय में कोई शत्रु भी यह कहने का साहस नहीं कर सकता था कि वह किसी दबाव या भय से न्याय–पथ से

जौ–भर विचलित हो सकते हैं। उनकी यही न्यायपरता इस समय भिखारिन की रिहाई में बाधक हो रही थी।
जज साहब ने पूछा–तुम्हारा नाम–
भिखारिन ने कहा–भिखारिन ।
'तुम्हारे पिता का नाम?'
'पिता का नाम बताकर उन्हें कलंकित नहीं करना चाहती।'
'घर कहां है?'
भिखारिन ने दु:खी कंठ से कहा–पूछकर क्या कीजिएगा– आपको इससे क्या काम है–
'तुम्हारे ऊपर यह अभियोग है कि तुमने तीन तारीख को दो अंग्रेजों को छुरी से ऐसा जख्मी किया कि दोनों उसी दिन मर गए। तुम्हें यह अपराध स्वीकार है?'
भिखारिन ने निशंक भाव से कहा–आप उसे अपराध कहते हैं मैं अपराध नहीं समझती।
'तुम मारना स्वीकार करती हो?'
'गवाहों ने झूठी गवाही थोड़े ही दी होगी।'
'तुम्हें अपने विषय में कुछ कहना है?'

भिखारिन ने स्पष्ट स्वर में कहा–मुझे कुछ नहीं कहना है। अपने प्राणों को बचाने के लिए मैं कोई सफाई नहीं देना चाहती। मैं तो यह सोचकर प्रसन्न हूं कि जल्द जीवन का अंत हो जाएगा। मैं दीन, अबला हूं। मुझे इतना ही याद है कि कई महीने पहले मेरा सर्वस्व लूट लिया गया और उसके लुट जाने के बाद मेरा जीना वृथा है। मैं उसी दिन मर चुकी। मैं आपके सामने खड़ी बोल रही हूं, पर इस देह में आत्मा नहीं है। उसे मैं जिंदा नहीं कहती, जो किसी को अपना मुंह न दिखा सके। मेरे इतने भाई–बहन व्यर्थ मेरे लिए इतनी दौड़–धूप और खर्च–वर्च कर रहे हैं। कलंकित होकर जीने से मर जाना कहीं अच्छा है। मैं न्याय नहीं मांगती, दया नहीं मांगती, मैं केवल प्राण–दंड मांगती हूं। हां, अपने भाई–बहनों से इतनी विनती करूंगी कि मेरे मरने के बाद मेरी काया का निरादर न करना, उसे छूने से घिन मत करना, भूल जाना कि वह किसी अभागिन पतिता की लाश है। जीते–जी मुझे जो चीज नहीं मिल सकती, वह मुझे मरने के पीछे दे देना। मैं साफ कहती हूं कि मुझे अपने किए पर रंज नहीं है, पछतावा नहीं है। ईश्वर न करे कि मेरी किसी बहन की ऐसी गति हो लेकिन हो जाए तो उसके लिए इसके सिवाय कोई राह नहीं है। आप सोचते होंगे, अब यह मरने के लिए इतनी उतावली है, तो अब तक जीती क्यों रही– इसका कारण मैं आपसे क्या बताऊं– जब मुझे होश आया और अपने सामने दो आदमियों को तड़पते देखा, तो मैं डर गई। मुझे कुछ सूझ ही न पड़ा कि मुझे क्या करना चाहिए। उसके बाद भाइयों–बहनों की सज्जनता ने मुझे मोह के बंधन में जकड़ दिया, और अब तक मैं अपने को इस धोखे में डाले हुए हूं कि शायद मेरे मुख से कालिख छूट गई और अब मुझे भी और बहनों की तरह विश्वास और सम्मान मिलेगा लेकिन मन की मिठाई से किसी का पेट भरा है– आज अगर सरकार मुझे छोड़ भी दे, मेरे भाई–बहनें मेरे गले में फूलों की माला भी डाल दें, मुझ पर अशर्फियों की बरखा भी की जाए, तो क्या यहां से मैं अपने घर जाऊंगी– मैं विवाहिता हूं। मेरा एक छोटा–सा बच्चा है। क्या मैं उस बच्चे को अपना कह सकती हूं– क्या अपने पति को अपना कह सकती हूं– कभी नहीं। बच्चा मुझे देखकर मेरी गोद के लिए हाथ फैलाएगा पर मैं उसके हाथों को नीचा कर दूंगी और आंखों में आंसू भरे मुंह फेरकर चली जाऊंगी। पति मुझे क्षमा भी कर दे। मैंने उसके साथ कोई विश्वासघात नहीं किया है। मेरा मन अब भी उसके चरणों से लिपट जाना चाहता है लेकिन मैं उसके सामने ताक नहीं सकती। वह मुझे खींच भी ले जाए, तब भी मैं उस घर में पांव न रखूंगी। इस विचार से मैं अपने मन को संतोष नहीं दे सकती कि मेरे मन में पाप न था। इस तरह तो अपने मन को वह समझाए, जिसे जीने की लालसा हो। मेरे हृदय से यह बात नहीं जा सकती कि तू अपवित्र है, अछूत है। कोई कुछ कहे, कोई कुछ सुने। आदमी को जीवन क्यों प्यारा होता है– इसलिए नहीं कि वह सुख भोगता है। जो सदा दुख भोगा करते हैं और रोटियों को तरसते हैं, उन्हें जीवन कुछ कम प्यारा नहीं होता। हमें जीवन इसलिए प्यारा होता है कि हमें अपनों का प्रेम और दूसरों का आदर मिलता है। जब इन दो में से एक के मिलने की भी आशा नहीं तो जीना वृथा है। अपने मुझसे अब भी प्रेम करें लेकिन वह दया होगी, प्रेम नहीं। दूसरे अब भी मेरा आदर करें लेकिन वह भी दया होगी, आदर नहीं। वह आदर और प्रेम अब मुझे मरकर ही मिल सकता है। जीवन में तो मेरे लिए निंदा, और बहिष्कार के सिवा कुछ नहीं है। यहां मेरी जितनी बहनें और भाई हैं, उन सबसे मैं यही भिक्षा मांगती हूं कि उस समाज के उबर के लिए भगवान् से प्रार्थना करें, जिसमें ऐसे नर–पिशाच उत्पन्न होते हैं।

भिखारिन का बयान समाप्त हो गया। अदालत के उस बड़े कमरे में सन्नाटा छाया हुआ था। केवल दो-चार महिलाओं की सिसकियों की आवाज सुनाई देती थी। महिलाओं के मुख गर्व से चमक रहे थे। पुरुषों के मुख लज्जा से मलिन थे। अमरकान्त सोच रहा था, गोरों को ऐसा दुस्साहस इसीलिए तो हुआ कि वह अपने को इस देश का राजा समझते हैं। शान्तिकुमार ने मन-ही-मन एक व्याख्यान की रचना कर डाली थी, जिसका विषय था-स्त्रियों पर पुरुषों के अत्याचार। सुखदा सोच रही थी-यह छूट जाती, तो मैं इसे अपने घर में रखती और इसकी सेवा करती। रेणुका उसके नाम पर एक स्त्री-औषधालय बनवाने की कल्पना कर रही थी।

सुखदा के समीप ही जज साहब की धर्मपत्नी बैठी हुई थीं। वह बड़ी देर से इस मुकदमे के संबंध में कुछ बातचीत करने को उत्सुक हो रही थीं, पर अपने समीप बैठी हुई स्त्रियों की अविश्वास-पूर्ण दृष्टि देखकर-जिससे वे उन्हें देख रही थीं, उन्हें मुंह खोलने का साहस न होता था।

अंत में उनसे न रहा गया। सुखदा से बोलीं-यह स्त्री बिलकुल निरपराध है।

सुखदा ने कटाक्ष किया-जब जज साहब भी ऐसा समझें।

'मैं तो आज उनसे साफ-साफ कह दूंगी कि अगर तुमने इस औरत को सजा दी, तो मैं समझूंगी, तुमने अपने प्रभुओं का मुंह देखा।'

सहसा जज साहब ने खड़े होकर पंचों को थोड़े शब्दों में इस मुकदमे में अपनी सम्मति देने का आदेश दिया और खुद कुछ कागजों को उलटने-पलटने लगे। पंच लोग पीछे वाले कमरे में जाकर थोड़ी देर बातें करते रहे और लौटकर अपनी सम्मति दे दी। उनके विचार में अभियुक्त निरपराध थी। जज साहब जरा-सा मुस्कराए और कल फैसला सुनाने का वादा करके उठ खड़े हुए।